वर्ष ३

ओ३म् **भक्ति** ओ३म्

संख्या ३

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादकः—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द
मार्गशीर्ष १९८९

इस अङ्क का मूल्य ।)

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा।

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्र के संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखों को प्रकाशित करना न करना, घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और व प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए।

८. जिन ग्राहकों के पास किस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

विषय सूची

विषय — पृष्ठ

१. मंगलाचरण १२७
२. श्रीकृष्ण चरित्र [ले० भूमानन्द ब्रह्मचारी १३९
३. भगवद्भक्ति [ले० पूज्य श्रीभोले बाबा १४३
४. हनुमान का भीम को उपदेश [ले० श्रीमती सूरज देवी १५०
५. श्रीमद्भगवद्गीता [ले० श्री० पूज्य महादेव सरस्वती १५४
६. भक्ति [ले० श्री पं० रघुनाथ स्वामी १५६
७. देख हरि मुसकाने कविता) [ले० श्रीमती ब्रजकुमारी १५८
८. प्रेम [ले० श्री० ब्रजकुमारी १५९
९. जय झंकार (कविता) [ले० श्रीमती १६३
सुमित्रा देवी १६३
१०. जिज्ञासु कर्तव्य [ले० श्री महात्मा राम १६[illegible]
११. भजन १६[illegible]

यदि आप को

बढ़िया, सस्ता और समय पर छपाई का काम कराना है तो

भक्ति प्रेस

श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी में भेजिये।

हमारे यहां

हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेजी में सब प्रकार का काम छपता है बुक वर्क के साथ साथ साप्ताहिक, पाक्षिक तथा मासिक पत्र और जाबवर्क में बिलबुक, रसीदबुक, हुण्डी, कार्ड, लिफाफे बीजक, नकशे, लेटर पेपर और विजिटिंग कार्ड आदि सब प्रकार की दुरंगी, तिरंगी छपाई का काम बहुत सुन्दर, सस्ता और समय पर छाप कर दिया जाता है।

हाफटोन ब्लाकों की छपाई का भी खास प्रबन्ध है।

मैनेजर

"भक्ति प्रेस" श्रीभगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

भक्ति

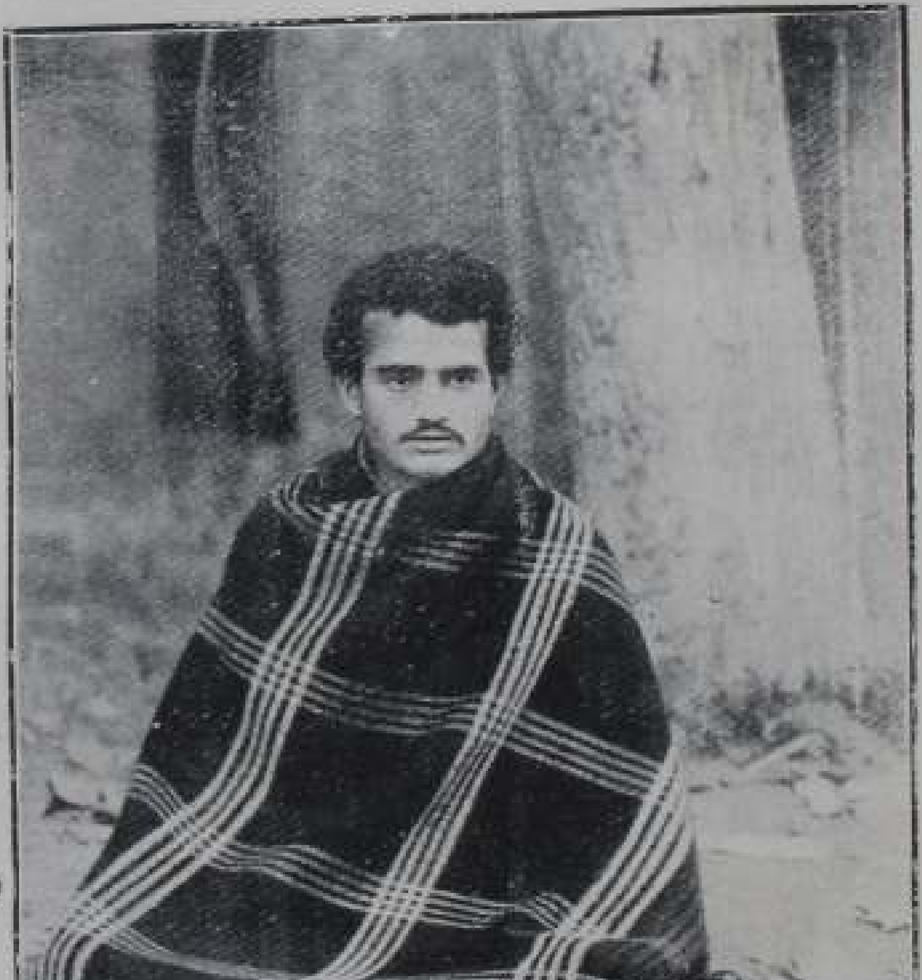

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका ।

वर्ष ३ } भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, मार्गशीर्ष पूर्णिमा सं० १९८५ । { अङ्क ३

मङ्गलाचरण ।

यस्या लीयत शल्कसीम्नि जलधिः पृष्ठे जगन्मण्डलम् ।
दंष्ट्रायां धरणिर्नखे दितिसुताधीशः पदे रोदसी ॥
क्रोधे क्षत्रगणः शरे दशमुखः पाणौ प्रलम्बासुरो ।
ध्याने विश्वमसावधार्मिककुलं कस्मैचिदस्मै नमः ॥ १ ॥

जिसके शल्क की सीमा में समुद्र, पृष्ठ पर जगन्मण्डल, दंष्ट्रा में पृथिवी, नख में हिरण्यकशिपु, पैर में आकाश और पृथिवी, क्रोध में क्षत्रियों का समूह, बाण में रावण, हाथ में प्रलम्ब नामक दैत्य, ध्यान में संसार तथा खड्ग में पापियों का कुल छिप गया ऐसे किसी पुरुष के लिये नमस्कार है ॥ १ ॥

कल्याणानां त्वमसि महसां भाजनं विश्वमूर्ते,
धुर्यां लक्ष्मीमथ मयि भृशं धेहि देव प्रसीद ।
यद्यत्पापं प्रतिजहि जगन्नाथ नम्रस्य तन्मे,
भद्रं भद्रं वितर भगवन्भूयसे मङ्गलाय ॥ २ ॥

हे विश्वमूर्ति ! कल्याण और तेज का तू पात्र है अब श्रेष्ठ लक्ष्मी का मुझ में सुस्थापन कर, हे देव ! प्रसन्न हो हे जगन्नाथ ! नम्र हुए मेरे जो जो पाप हैं उनको नष्ट करो, और हे भगवन् ! बहुत मङ्गल के लिये तुम हमें भद्र दान करो ॥ २ ॥

पार्वती फणिबालेन्दु भस्म मन्दाकिनीयुता ।
पवर्ग रचिता मूर्तिरपवर्ग प्रदास्तु नः ॥ ३ ॥

पार्वती, फणि, नवीन चन्द्रमा, भस्म और मन्दाकिनी से युक्त पवर्ग से बनी हुई मूर्ति हमें अपवर्ग देने वाली हो ॥ ३ ॥

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये ।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥ ४ ॥

हे भगवन् ! आप सत्य संकल्प और सत्य परायण हो, तीनों काल में पाचों भूतों के कारण रूप हो, सम दृष्टि और मनोहर वाणी केप्रवर्तक और ज्ञानियों के प्रेरणा करने वाले सत्य रूप आपही हो । हे नाथ ! हम आपकी शरण हैं ॥ ४ ।

मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंस राजन्य विप्रविबुधेषु कृतावतारः ।
त्वं पासिनस्त्रिभुवनं च यथाऽधुनेश भारं भुवोहर यदूत्तम वन्दनं ते ॥ ५ ॥

हे भक्तवत्सल ! मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, नृसिंह, वराह, हंस, रामचन्द्र, परशुराम और वामनादि रूप धारण करके आपने जिस प्रकार त्रिलोकी की और हमारी रक्षा की थी उसी प्रकार अब इस पृथिवी का भार उतारो । हे वैकुण्ठ विहारी ! हमारा आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ ५ ॥

तस्मै तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे ।
आत्मद्योत गुणैश्छन्न महिम्ने ब्रह्मणे नमः ॥ ६ ॥

हे वासुदेव ! सर्व के कर्ता और स्वयं प्रकाशित किये हुए गुणों से जिनकी महिमा ढक हो रही है ऐसे ज्ञान रूप आपको हम बारम्बार नमस्कार करते हैं ॥ ६ ॥

नमः परम कल्याण नमः परम मंगल ।
वासुदेवाय शान्ताय यदूनां पतये नमः ॥ ७ ॥

हे परम कल्याण रूप ! हे परम मङ्गल-रूप, हे भगवन ! आपको नमस्कार है । आपके शान्त रूप को नमस्कार है । हे वासुदेव ! हे यदुकुल की रक्षा करने वाले आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ ७ ॥

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् ।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं, तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥८॥

जिस परमेश्वर का कीर्तन, स्मरण, दर्शन, वंदन, श्रवण और पूजन करने से तत्काल मनुष्यों के पापों

का नाश हो जाता है और जिसकी कीर्ति परम मङ्गल कारिणी है उस परमात्मा को मेरे अनेकों प्रणाम हैं॥ ८॥

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने।
भूतावासाय भूताय पराय परमात्मने॥ ९॥

पञ्चभूतों के आश्रय रूप, सबके आदि कारण आप कारण से रहित ऐसे परम कारण परमात्मा को हम नमस्कार करते हैं॥ ९।

ज्ञान विज्ञान निधये ब्रह्मणेऽनंत शक्तये।
अगुणायाविकाराय नमस्तेऽप्राकृताय च॥ १०॥

आप चैतन्य शक्ति करके परिपूर्ण हो, व्यापक हो, अनन्त शक्तिमान्, निर्गुण, निर्विकार, तथा माया के प्रवर्तक हो आपको हम बारम्बार नमस्कार करते हैं॥ १०॥

नमोऽनंताय सूक्ष्माय कूटस्थाय विपश्चिते।
नाना वादानुरोधाय वाच्यवाचक शक्तये॥ ११॥

अनन्त के लिये, सूक्ष्म के लिये, कूटस्थ के लिये, सर्वज्ञ के लिये, अनेक रूप के लिये नमस्कार है॥११।

श्रीकृष्ण चरित्र

तृतीयांक से आगे

महात्मा अक्रूरका श्रीकृष्ण के पास गमन।

एकबार नारद जी कंसकी सभा में गये। वहां जाकर उन्होंने कंस को बताया कि कृष्ण ही वसुदेव का पुत्र है। हे राजन् यशोदा के तो कन्या उत्पन्न हुई थी और देवकी के कृष्ण। वसुदेव ने कृष्ण को रातों रात अपने मित्र नन्दजी के घर पहुंचा दिया था। यह अलौकिक पुरुष हैं। इसीलिये इन्होंने भेजे हुए सब असुरों को अनायास ही मार दिया है। तब तो कंसको क्रोध उत्पन्न हुवा और उसने तुरन्त वसुदेव देवकी को बन्दीगृह में भेज दिया और कृष्णको मारने के लिये अरिष्टासुर तथा केशी आदि दैत्योंको भेजा। यह दैत्य घोड़े तथा बैल के रूप में भगवान्

के पास आये। परन्तु भगवान तो त्रिकालज्ञ थे। उन्होंने अपने पराक्रम से अनायास ही उन दैत्यों को परमधाम में भेज दिया। तब कंसने चाणूर, मुष्टिक आदि दैत्यों से कहा कि तुम सब सुसज्जित होकर मल्लशाला में बैठ जाओ। मैं किसी उपाय से कृष्ण बलदेव को यहां बुलवाता हूं। जिस समय वह दोनों आवें तब तुरन्त तुम सब मिल कर उन बालकों को पीस डालना। इसके पश्चात् उसने महात्मा अक्रूर जी को कहा कि हे अक्रूरजी तुम्हारे से अधिक मेरा कोई हित चिन्तक नहीं है। तुम जाकर कृष्ण बलदेव से कहना कि तुम्हारे मामा ने धनुष यज्ञ किया है अतः तुमको भी याद किया है इसलिये तुम वहां चलो। जब वे दोनों भाई यहां पर आवेंगे तब मेरे यह शूरवीर मल्ल उनको चूर चूर कर डालेंगे। तब मैं निष्कंटक भूमि का राज्य करूंगा। अक्रूर जी ने कहा राजन्! जो कुछ प्रारब्ध में लिखा है वह अवश्य होकर रहेगा। इस को कोई मेटने वाला नहीं है। परन्तु यदि आप की ऐसी ही आज्ञा है तो मैं अवश्य कृष्ण बलदेव को यहां ले आऊंगा।

प्रातः होते ही अक्रूर जी ने रथ जोड़ कर वृन्दावन की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में पूर्व जन्म के पुण्य प्रभाव से अक्रूर जी श्रीकृष्ण चन्द्र में परम भक्ति को प्राप्त होकर निम्न लिखित वाक्य कहने लगे "अहो मैंने कौनसा पुण्य कर्म, तप तथा सत्पात्रों को दान दिया था, जिसके प्रभाव से भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का आज दर्शन करूंगा। इस संसार में भगवान् का साक्षात्कार होना अत्यन्त ही कठिन है। मैं भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र को लेने चला हूं इसलिये मेरा मंगल हुवा, जन्म सफल हुवा, कारण कि योगी जन जिनका ध्यान करते हैं उन्हीं भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में मैं आज नमस्कार करूंगा। देखो! बड़ा आश्चर्य है कि कंस जैसे दुष्ट पुरुष ने मेरे ऊपर ऐसा अनुग्रह किया है उसके भेजने से मुझको अवतारधारी भगवान् का दर्शन होगा जिनके मुख मण्डल की कान्ति से अम्बरीष आदि सब दुरत्यय सागर को तर गये। जिन चरण कमलों को ब्रह्मा, रुद्रादि देवताओं ने और लक्ष्मी तथा मुनीश्वरों ने, भक्तों ने पूजा है पूर्व जन्म के पुण्य प्रभाव से उन्हीं चरणों के आज दर्शन करूंगा। पृथिवी का भार उतारने के लिये अपनी इच्छा से मनुष्य रूप धारण करने वाले, शोभा के धाम भगवान् श्रीकृष्ण के शोभायमान् रूप का आज दर्शन करके मैं अपने नेत्रों को सफल करूंगा। यादवों के कुल में जिन भगवान ने अवतार लिया है, वह अपनी मर्यादाओं का पालन करनेवाले, लोकपालों को सुख देने वाले भगवान् व्रज में रहते हैं और सबके मंगल करने वाले हैं। उनके यश को देवता भी गाते हैं। महत् पुरुषों को सुन्दर गति देनेवाले, त्रिलोकी में सुन्दर, पुरुषों के आनन्द देने वाले, लक्ष्मी के निवास स्थान, सुन्दर रूप धारण किये श्रीकृष्ण जी का आज मैं निश्चय ही दर्शन करूंगा। जिनका ध्यान योगी पुरुष करते हैं उनको आज मैं अवश्य प्रणाम करूंगा, फिर व्रजवासी सब सखाओं को प्रणाम करूंगा, पश्चात् भगवत् चरणों से पवित्र हुई रज में लोट जाऊंगा तब वह शरणागतों को अभय करने वाला अपना हस्त कमल मेरे शिर पर रक्खेंगे। यद्यपि मैं कंस का भेजा हुवा दूत हूं तो भी मुझ पर "यह शत्रु का दूत है" ऐसी बुद्धि नहीं करेंगे। भगवान् करुणा भरी दृष्टि से जिस समय मुझको देखेंगे उसी समय पाप और भय से रहित होकर मैं परमानन्द को प्राप्त हूंगा। जिस समय मैं मस्तक झुका कर हाथ

जोड़ कर भगवान् के सम्मुख खड़ा हूंगा तब "काका अक्रूर" इस प्रकार मन्द मुसकान से भगवान् मुझ से कहेंगे तब मेरा जन्म सफल होगा यद्यपि भगवान् का न कोई शत्रु है न मित्र, न प्रिय है न अप्रिय है परन्तु तो भी भगवान् भक्त को भजते हैं" अक्रूरजी इस प्रकार मन ही मन भगवद्गुण गाते हुए वृन्दावन को जा रहे थे तब उन्होंने ब्रह्मादिक देवता जिनकी चरण रज को शीश पर धारण करते हैं ऐसे भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के चरण चिह्न व्रज में देखे। तब तो वह भगवान के चरण चिन्हों के दर्शन करके आनन्द से संभ्रम होगये तथा प्रेम से रोमांच हो आये। सजल नेत्रों से अक्रूर जी रथ से उतरे और 'यह मेरे प्रभु के चरणों की रज है इस प्रकार कह कर चरणों में लोटने लगे।

अक्रूरजी भगवत् दर्शन की उत्कण्ठा से नन्दजी की गोशाला में आये। वहां उन्होंने कमल-नेत्र, सुन्दर मुख, पीताम्बरधारी वनमाला पहिरे तथा भूभार निवारणार्थ अवतार धारण करने वाले भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र के दर्शन करके प्रेम में विह्वल होगये, चरणों में दण्डवत् प्रणाम की, आंखों की गङ्गा उमड़ आई, उत्कण्ठा से अंग में रोमाञ्च हो गये और प्रेम में सब सुधि बुध भूल गये। तब भगवान ने अक्रूर जी को उठा कर अपने हृदय से लगाया और कुशल क्षेम पूछा। महात्मा अक्रूरजी ने अपने आने का समस्त वृत्तान्त भगवत् चरणों में निवेदन किया। श्रीकृष्णजी अक्रूर जी की बात सुन कर हंसे पश्चात् उन्होंने सब वृतान्त नन्दजी से कहा, नन्दजी ने अनुचरों को रथादि सामग्री तैयार करने की आज्ञा की। ग्वाल बालों ने जब सुना कि श्रीकृष्ण जी मथुरा जारहे हैं तो वह बहुत ही दुःखी हुए। उन्होंने अनेक प्रकार से श्रीकृष्ण से नहीं जाने के लिये अनुरोध किया। परन्तु भगवान ने उन सबको उचित रीति से समझा कर अक्रूर सहित मथुरा को प्रस्थान किया। गोकुल से चल कर सबके सब यमुना पर आये तब अक्रूर जी ने श्रीकृष्ण जी से यमुना में स्नान करने की आज्ञा लेकर ज्यूं ही कालिन्दी में गोता लगाया तो उन्होंने जलके भीतर ही कृष्ण बलदेव को देखा। अक्रूर जी को भ्रम हुवा कि मैंने तो उनको बाहर छोड़ा था यह जल में कैसे विराजमान हैं। तब तो उन्होंने बाहर निकल कर देखा तो दोनों भाई पहले की भान्ति रथ में विराजमान थे। तब अक्रूर जीने सन्देह निवृत्ति के अर्थ दूसरा गोता लगाया। फिर भी उन्होंने पीतवस्त्र धारण किये, अरुण नेत्र, सुन्दर भृकुटि, लम्बी भुजा, शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी भगवान् श्रीकृष्ण जी को पुनः जल के अन्दर देखा। तब अक्रूरजी हाथ जोड़ कर गद्गद् वाणी से स्तुति करने लगे।

नतोऽस्म्यहं त्वखिल हेतु हेतुं,
नारायणं पुरुष माद्यमव्ययम्।
यन्नाभिजात दरविन्दकोशाद्,
ब्रह्माविरासीद्यत एष लोकः॥

हे भगवन्! सम्पूर्ण कारणों के कारण नारायण आदि पुरुष अविनाशी, जिनकी नाभि में उत्पन्न हुए कमल से ब्रह्मा हुए और उस ब्रह्मा से यह लोक उत्पन्न हुवा ऐसे आपको नमस्कार करता हूं। हे प्रभो! समस्त ब्रह्माण्ड आपकी उपासना करते हैं आप इन्द्रिय, पञ्चभूत, देवता और इनके साक्षी अन्तर्यामी हो। इसलिये तुम्हारी साधु लोग पूजा करते हैं। हे प्रभो! जैसे पर्वतों से निकल कर और वर्षा के

जल से परिपूर्ण होकर नदियें चारों ओर से बह कर समुद्र में जा मिलती हैं, उसी प्रकार सब देवताओं के मार्ग अन्त में आप में ही आकर मिल जाते हैं।

तुभ्यं नमस्तेऽस्त्वविषक्त दृष्टये,
सर्वात्मने सर्वधियां च साक्षिणे ।
गुणप्रवाहोऽयमविद्यया कृतः,
प्रवर्तते देवनृतिर्यगात्मसु ॥

संसार में अलिप्त बुद्धि, सबके आत्मा, सब प्राणियों की बुद्धि के साक्षी आपको नमस्कार करता हूं। अविद्या से हुवा गुण का प्रभाव वाला संसार देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी इनकी देह में ही प्रवृत्त होता है, इसलिये इनमें और आपमें बड़ा अन्तर है।

हे प्रभो! अग्नि आपका मुख है, पृथिवी चरण हैं, सूर्य नेत्र हैं। आकाश नाभि है, दिशा कान हैं, स्वर्ग मस्तक है, देवता भुजा हैं, समुद्र कांख हैं, तथा पवन प्राण रूप है। इस संसार में लीला करने के लिये आप जो जो रूप धारण करते हो उन रूपों के ध्यान से मनुष्य विगत शोक होकर आपके यश का वर्णन करते हैं।

नमः कारण मत्स्याय प्रलयाब्धि चराय च ।
हयशीर्ष्णे नमस्तुभ्यं मधुकैटभ मृत्यवे ॥
अकूपाराय बृहते नमो मन्दरधारिणे ।
क्षित्युद्धार विहाराय नमः सूकर मूर्तये ॥
नमस्तेऽद्भुतसिंहाय साधुलोकभयापह ।
वामनाय नमस्तुभ्यं क्रान्त त्रिभुवनाय च ॥
नमो भृगूणां पतये दृप्तक्षत्रवनच्छिदे ।
नमस्ते रघुवर्याय रावणान्तकराय च ॥
नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च ।
प्रद्युम्नायाऽनिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥
नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानव मोहिने ।
म्लेच्छ प्राय क्षत्रहन्त्रे नमस्ते कल्किरूपिणे ॥
नमो विज्ञानमात्राय सर्व प्रत्यक्ष हेतवे ।
पुरुष शप्रधानायाब्रह्मणेऽनन्त शक्तये ॥
नमस्ते वासुदेवाय सर्व भूत क्षयाय च ।
हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो ॥

सत्यव्रत को माया दिखाने के हेतु मत्स्य रूप धर प्रलय के समुद्र में विचरने वाले तुम्हारे लिये नमस्कार है, मधुकैटभ दैत्य को मारने के लिये हयग्रीव रूप धरने वाले आपको नमस्कार है। मंदराचल पर्वत के धारण करने वाले बड़े कच्छ रूप तुम्हारे अर्थ नमस्कार है, पृथिवी लाने के लिये वराह रूप आपको नमस्कार है। साधु पुरुषों का भय दूर करने वाले अद्भुत नृसिंह रूप धरने वाले आपको नमस्कार है, वामन रूप होकर तीनों लोक नापने वाले तुम्हें नमस्कार है। गर्वीले क्षत्रिय रूप वन को काटने वाले भृगुवंशियों के पति परशुराम आपको नमस्कार है, रावण के मारने वाले रघुवंशियों में श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र रूप आपको नमस्कार है। वासुदेव रूप तुमको नमस्कार है, संकर्षण रूप तुमको नमस्कार है, अनिरुद्ध और प्रद्युम्न रूप तुमको नमस्कार है, भक्तों के पति तुमको नमस्कार है। दैत्य दानवों के मोहित करने वाले शुद्ध बुद्ध रूप तुमको नमस्कार है, म्लेच्छ प्राय क्षत्रियों के मारने वाले कल्की रूप तुमको नमस्कार है। विज्ञानमूर्ति समस्त ज्ञान के कारण पुरुष, काल माया रूप ब्रह्म तुम हो इसलिये हे अनन्त शक्तिमें आपको नमस्कार करता हूं। हे समर्थ! हे इन्द्रियों के प्रेरणे वाले! चित्त के

अधिष्ठाता, सब प्राणियों के आश्रय मैं तुमको नमस्कार करता हूं। तुम्हारी शरण में प्राप्त हुए मेरी रक्षा करो।

अक्रूरजी जल के भीतर जब भगवान् श्रीकृष्ण की इस प्रकार स्तुति कर रहे थे तब भगवान् वहां से अन्तर्धान होगये। अक्रूर जी जल से बाहर निकल कर आश्चर्यान्वित हुए हुए रथ के पास आये। उन को चकित हुआ देख कर भगवान् ने पूछा अक्रूर जी आप चकित से कैसे दिखाई देते हो! तब अक्रूर जी कहने लगे हे प्रभो! इस संसार में जितने आश्चर्य हैं वह सब आपमें विद्यमान हैं इसलिये आपके दर्शन करके फिर क्या आश्चर्य शेष रह गया। ऐसा कह कर अक्रूरजी ने रथ हांका और थोड़ी देर में मथुरा पुरी में पहुंच गये।

अपूर्ण

"भूमा"

भगवद्भक्ति

[ले० श्री० भोले बाबा जी अनूपशहर]

भक्ति का स्वरूप।

ज्ञानानां चिन्मयातीतां शून्यानां शून्य साक्षिणीम्। प्रपद्ये शरणं देवी भक्तानां भयनाशिनीम्॥

छप्पय

चातक स्वाती बिन्दु, भृंग ज्यों पुष्प कमल में।
ज्यों चकोर मुख चन्द मीन ज्यों निर्मल जलमें
कामी कामिनि सक्त, लुब्ध ज्यों लोभी धनमें।
त्योंही हो तल्लीन, दीन वत्सल चरणन में॥
भोला! दीप पतंग से पाठ भक्ति का लीजिये।
तन मन प्राणन इन्द्रियन वारण प्रभुपर कीजिये॥

मंसाराम:- गुरुजी! आपके श्रीमुख से कई बार ऐसा सुनने में आया है कि जो भक्ति महारानी की पाठशाला में पठन कर लेता है, उसको फिर कुछ पढ़ना पढ़ाना शेष नहीं रहता! उसको चारों वेद, छओं शास्त्रों का ज्ञान हो जाता है, वेद वेदान्त का हस्तामलक समान उसको प्रत्यक्ष हो जाता है। जो भक्ति महारानी के अखाड़े में कुश्ती लड़ लेता है, पूर्ण मल्ल हो जाता है, कोई उसे जीत नहीं सकता, माया के सब दाव पेच उस के याद हो जाते हैं, काम, क्रोध, लोभादि महान् शत्रु उस से हार मान जाते हैं! जिन्होंने दुनियांभर को तंग कर रक्खा है, उस के आज्ञाकारी चाकर बन जाते हैं! जो भक्ति महारानी की गोद में बैठ कर माया नटी के साथ चौपड़ खेलता है, उसका सर्वदा भगवत् से योग रहता है, स्वप्न में भी परमात्मा से उसका वियोग नहीं होता। वियोग न होने से उसको तीन काल में भी द्वैत नहीं फुरता! तीन गुणों के पाश में वह कभी नहीं फंसता! उस माई के लाल की पुर्यष्टका रूप आठों गोटें लाल हो जाती हैं। चौरासी का चक्र समाप्त हो जाता है, उसकी चौपड़ के चारों कोने, जो जरायुज, अंडज, स्वेदज और उद्भिज्ज चार खानि

रूप हैं, फट जाते हैं ! चौबीस, अड़तालीस, बहत्तर अथवा छयानवें प्रकृति विकृति शास्त्रकारों ने मानी हैं, ये ही संसार रूप चौपड़ के छयानवे खाने हैं, इन सब से भक्ति महारानी का भक्त पार हो जाता है और जो शून्य वादियों का शून्य है जो विज्ञान वादियों का विज्ञान मात्र है, जो सांख्यवादियों का पुरुष है, जो योगियों का ईश्वर है, शैवों का शिव है काल वादियों का काल है, वैष्णवों का विष्णु है, गणपतियों का गणपति है, शाक्तों की शक्ति है और जो ब्रह्मवादियों का ब्रह्म, वाणी का अगोचर शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूप, सर्व शास्त्रों का सिद्धांत है, जो सर्व के हृदय में विराजमान है उसी परम तत्व को वह भक्त प्राप्त होजाता है। जो भक्ति महारानी के सौन्दर्य को देख लेता है, वह सूर्य के समान तेज वाला, चन्द्र समान शीतल, कामदेव समान लावण्य वाला और मारुति समान बल वाला हो जाता है, माया का दीदे-नयन मटकाना उसके लिये बंद हो जाता है। भक्ति महारानी जिसको अपना गारुड़ी मंत्र बता देती है, उस पर फिर किसी दैत्य, दानव का जादू, अस्त्र, शस्त्र, नहीं चलता ! सारांश यह है कि वह सर्वदा के लिये शोक मोह रहित निर्भय अजर और अमर हो जाता है। ऐसा भक्तिमहारानी का महात्म्य है। ऐसा महात्म्य सुन कर कौन मूर्ख होगा, जो भक्ति महारानी के दर्शन और प्राप्ति न चाहेगा! हे गुरो! हे प्रभो! मैं उन्हीं महारानी का स्वरूप जानना चाहता हूं, कृपा करके मुझे उन का स्वरूप बताइये और उनकी प्राप्ति का उपाय भी बताइये, आप दया के समुद्र हैं, संसार समुद्र से पार करने वाले मल्लाह हैं, कृपा करके मुझे पार कीजिये !

मंसाराम के वचन सुन कर मस्तराम एक मुहूर्त तक पत्थर की मूर्ति के समान अचेत से हो गये हैं, न हिलते हैं, न जुलते हैं, आंखें खुली की खुली रह गई है, पलक झपकते नहीं हैं, ऐसा अनुमान होता है:-

चौपाई-शंकर सहज स्वरूप संभारा।
लगी समाधि अखंड अपारा ॥

मस्तराम:-भाई मन्साराम ! आज तुम्हारा कोई महान् पुण्य उदय हुआ दीखता है ! भक्ति महारानी का तुम पर पूर्ण अनुग्रह है ! ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य और देवी पांचों देव तुम्हारे अनुकूल हैं आज तुम सीधे मार्ग पर आगये हो ! अभी तक तो अनेक उपद्रव मचाते रहते थे ! खेल तमाशे ही सुहाते थे ! दिन रात चौपड़ ही खेलते रहते थे, तीन काने, चार काने पंजड़ी छकड़ी ही फैंकते रहते थे ! आज तुम को चौपड़ फाड़ने की सूझी है, जब देखो तब ग्यारह दो ही पड़ा करते थे. आज भक्ति महारानी की कृपा से तुम्हारे पौ बारह पच्चीस पड़ गये हैं ! अब तुम पंच भूतों के पंजे में नहीं फंसोगे और न षड्ूर्मि में पड़ने से तुम को छक्के छोड़ने पड़ेंगे। आज तुम्हारी चौपड़ का पर फट जायगा और तुम कभी चौपट नहीं होगे। त्रिगुणों में नहीं पड़ोगे, तीनों अवस्थाओं से पार होजाओगे, त्वचा आदि सात धातुओं के साथ गलाये नहीं जाओगे, अविद्या आदि आठ पुरुषों से बाहर हो जाओगे ! नवग्रह उतर जायंगे, दशों दिशाओं में पूर्ण हो जाओगे ग्यारह रुद्र अब तुम को नहीं रुलायेंगे, न बारह आदित्य तपावेंगे चौदह भवन के अधिपति हो जाओगे। पंद्रह कलायें अपने कारण रूप परमात्मा में मिल जायंगी सोलहवीं कला ब्रह्माण्ड में कीर्ति फैलावेगी

सत्तरह तत्व का सूक्ष्म शरीर बिखर जायगा, गीता के अठारह अध्याय और महाभारत के अठारह पर्व तथा अठारह पुराण उपपुराण पूर्ण हो जायंगे ! मंसाराम तुम धन्य हो ! अच्छा ! सुनो भक्ति का स्वरूप ।

भक्ति के मुख्य आचार्य शांडिल्य ऋषि हैं, 'सापरानुरक्तिरीश्वरे' इस सूत्रसे भक्ति का स्वरूप कहा है, इस का अर्थ यह है कि ईश्वर में परम अनुराग होना भक्ति है। अनुराग प्रेम या स्नेह को कहते हैं। संसार के सर्व पदार्थों में से प्रेम हटाकर केवल ईश्वर में प्रेम करने का नाम भक्ति है।

मंसाराम: महाराज, गीता में एक स्थल पर अनन्य भजन और ध्यान को भक्ति कहा है, दूसरे स्थान पर सेवा करने को भक्ति वर्णन किया है और तीसरी जगह लिखा है कि मन और प्राण को मुझ में लगाना, मेरा ही परस्पर समझना समझाना, मेरा ही कथन करना, इसका नाम भक्ति है। रामानुज, माध्व, निम्बार्क और विष्णु स्वामी आदि आचार्यों ने यह निर्णय और निश्चय किया है कि दिन रात निरन्तर गंगा के प्रवाह के समान अनुक्षण ध्येयाकार वृत्ति का नाम भक्ति है। एक स्थान पर भगवान का वचन है कि जो जिस प्रकार के भाव से मेरी शरण में आते हैं, मैं उनको उसी प्रकार प्राप्त होता हूं। एक स्थान पर भगवान् ने मन की प्रसन्नता को ही भक्ति कहा है। लिङ्गपुराण में मन, वाणी तथा कर्मसे भगवत् की सेवा को भक्ति बताया है। तंत्र शास्त्र में लिखा है कि भक्ति के तीन अक्षर हैं, 'भ' अक्षर भव रूप संसार के दुःखों की निवृत्ति करता है, 'क' अक्षर कल्याण करने वाला है और तीसरा अक्षर 'ती' तीव्र ज्ञान का दाता है, इन तीनों कारणों से भक्ति नाम रक्खा गया है। सन्तकुमार संहिता में लिखा है कि जो सर्व दुःखों को दूर करदे, उसी का नाम भक्ति है। एक स्थल पर कहा है कि भगवत को स्वामी और अपने को भृत्य मानना, इसको भक्ति कहते हैं। भगवत का वचन है कि भक्तों के भाव अनेक प्रकार के हैं, उनके भावों के अनुसार भक्ति अनेक प्रकार की है, इसलिये भाव ही को भक्ति जानना चाहिये। विष्णु पुराण में कहा है कि शास्त्राज्ञानुसार कर्म करना, निषिद्ध कर्मों का त्यागना और भगवत् आज्ञा के बंधन में रहना, इसी का नाम भक्ति है क्योंकि ऐसा करने से ही भगवत् की कृपा होगी। पतञ्जलि भगवान ने आठ सूत्रों से आठ प्रकार की भक्ति कही है, इस प्रकार भक्ति के स्वरूप में विरोध पायाजाता है, तब सिद्धान्त क्या है ?

मस्तराम:-भाई ! सिद्धान्त तो वही अनुराग है यानी भगवत् में दृढ स्नेह होने को भक्ति कहते हैं। उपरोक्त विरोध कथन मात्र ही है। विचार करके देखा जाय तो उन सबका परिणाम भगवत् की प्रीति ही है। शास्त्रकारों ने अधिकारियों को अनेक प्रकार से भगवत् में मन लगाने यानी प्रीति करने को कहा है, इस लिये विरोध दिखाई देता है, प्रीति करने के मार्ग भिन्न २ हैं, प्रीति सब में समान है इसलिये कुछ विरोध नहीं है। अनुराग ही भक्ति है। विशेष निर्णय अनुराग का यह है कि उपासक की संपूर्ण अन्तर्बाह्य वृत्तियां मित्र, शत्रु, सुख, दुःख भाव से रहित होकर वेद, स्मृति, पुराण तथा नारद पञ्चरात्र इत्यादि शास्त्रों की आज्ञानुसार भगवत् के श्रवण, कीर्तन, पूजनादिक में निष्काम होकर लगी रहें, अथवा शास्त्र तथा नरकादिक के भय को छोड़ कर स्वर्गादिक के संपूर्ण सुख भोग से उदासीन होकर और

संपूर्ण ब्रह्माण्डों की शोभा तथा सुन्दरता का सार जो भगवन् का रूप है उसमें स्वाभाविक आप से आप अखंड निश्चल अनुराग वृत्तियां लगी रहें, इसका नाम भक्ति है। यह भक्ति विहित और अविहित दो प्रकार की है। जो भक्ति शास्त्र की रीति और आज्ञानुसार की जाती है वह विहित कहलाती है। विहित भक्ति चार प्रकार की है, एक काम यानी चाहना से जैसे गोपिका, ध्रुव आदि की, दूसरी द्वेष यानी शत्रुता से जैसे रावण, शिशुपालादिक की, तीसरी भय से जैसे कंस, मारीचादिक की, और चौथी स्नेह यानी प्रीति से जैसे नारद, सनकादिक की। इन चारों में से शत्रुता और भय की भक्ति उपासना की रीति से त्याज्य हैं। दूसरी अविहित भक्ति उसको कहते हैं कि जो स्वाभाविक आप से आप बुद्धि के विचार से शास्त्राज्ञा बिना ही भगवन् में प्रीति हो यह अंतिम फल रूप है। यद्यपि इसको भिन्न २ कहने में कोई प्रयोजन नहीं है तो भी कोई २ इसके दो भेद बताते हैं, एक ज्ञानाङ्गा, जो ज्ञान को उत्पन्न करके फल देती है और दूसरी स्वतंत्रा, जो स्वयं मुक्ति देती है, ज्ञान उसका एक अंग है। इसमें गीता का वचन प्रमाण है 'मेरे भक्त माया को तरते हैं'। दूसरा वचन यह है 'मेरे भक्त मुझ को प्राप्त होते हैं'। तीसरा वचन यह है 'जिसको संसार से मुक्त होने की इच्छा हो, वह केवल मेरा ही सेवन करे'। यह भक्ति उत्तम, मध्यम और प्राकृत भेद से तीन प्रकार की है। उत्तम भक्ति का यह स्वरूप है 'भगवत् को सर्वत्र व्यापक और वर्तमान देखना, सबको भगवन्मय जानना, जैसे तरंगें अनेक होते हुये भी समुद्र एक ही है। इसी प्रकार चराचर जीव एक भगवत् स्वरूप ही है, ऐसा मानना, इसका नाम उत्तम भक्ति है। मध्यम भक्ति यह है कि भगवत् में प्रीति करना और भगवद्भक्तों को अपना मित्र जानना और प्राकृत भक्तों पर दया तथा अनुग्रह करना, द्वेषी जनों से दूर रहना। प्राकृत भक्ति यह है कि भगवत् और भगवन् की अर्चा, मूर्ति इत्यादि को ईश्वर रूप जानना। यह ही भक्ति सात्विक, राजस और तामस भेद से तीन प्रकार की है। निष्काम भक्ति सात्विक है, जैसे प्रह्लाद आदिक की, सकाम भक्ति राजस है जैसे ध्रुव, गज इत्यादिक की और शत्रु विजय के हेतु जो भक्ति की जाती है, वह तामस है जैसे इन्द्र ने वृत्रासुर के वध के लिये भगवत् का आराधन किया था। भागवत में इसी भक्ति को मानस वाचक, और कायिक तीन प्रकार की कहा है। मन से जो भक्ति की जाती है, वह मानस है, वाणी से जो की जाती है वह वाचक और जो शरीर से की जाती है, वह कायिक कहलाती है। इसी भक्ति को गीता में चार प्रकार का कहा है, एक आर्त्त की, जो किसी दुःख के कारण से भगवत् की आराधना की जाय, जैसे द्रौपदी गजादिक ने की थी, दूसरी जिज्ञासु की, जो मुक्ति की इच्छा से की जाय, जैसे परीक्षित आदि ने की थी, तीसरी अर्थार्थी की, जैसे ध्रुव ने की थी, और चौथी ज्ञानी की, जैसे प्रह्लाद नारद, सनकादिक की। फिर यह ही भक्ति तीन प्रकार की है, एक स्वयं करना, दूसरी दूसरे को समझा कर कराना और तीसरी किसी को भक्ति करते देख कर प्रसन्न होना। भागवत में यह ही भक्ति श्रवण १ कीर्तन २, स्मरण ३, सेवा ४, अर्चा ५, वन्दन ६, दास्य ७, सख्य ८, और आत्म निवेदन ९ नौ प्रकार की कही है, इसी का नाम नवधा भक्ति है, इनका भिन्न २ वर्णन प्रसंगानुसार करेंगे। यह ही भक्ति भूमिका भेद से ग्यारह प्रकार की है। प्रथम भूमिका सत्संग, दूसरी भूमिका भक्तों की दया और प्रसन्नता

के योग्य होजाना, तीसरी भूमिका भक्तोंके शांति दया आदिक आचारों में श्रद्धा तथा विश्वास करना, चौथी भूमिका भगवत् चरित्रोंका श्रवण करना पांचवीं भूमिका श्रवण किये हुए भगवान्के स्वरूपमें प्रीति उत्पन्न होना, छठी भूमिका,भगवान् केस्वरूप और अपने स्वरूप को यथार्थ जानलेना इस अवस्थाको अद्वैत वादी ज्ञान कहते हैं। सातवीं भूमिका भगवान् के स्वरूप में अधिक प्रेम होना, आठवीं भूमिका भगवान् का प्रकाश दिन प्रति दिन हृदय में अधिक होना नवीं भूमिका दया और अत्यंत निर्मल होना और भगवान् के धर्मोंका आरंभ होना, दशवीं भूमिका ईश्वरता, दयालुता और सर्वज्ञतादि ईश्वरके पूर्णधर्म पुरुषमें आजाना और ग्यारहवीं भूमिका यह है कि इस पुरुषको जितनी प्रीति अपने शरीर में है, उतनी ही प्रीति भगवान् में हो और क्षणभर भी भगवान् स्वरूप के चिंतवन से चलायमान न हो। फिर यह ही भक्ति भक्तिज्ञानादि भेदसे क्रमसे अधिक होती हुई तीस प्रकार की है। यह भक्ति का विभाग केवल भक्तोंके मनकी अवस्था विशेषके कारण है, नहीं तो भक्ति एकही है, इस बातको इस दृष्टान्त से समझना चाहिये।

एक दिन उद्धव ने भगवान् से पूछा 'महाराज! कोई तो चौबीस तत्व बताता है, कोई सत्रह, कोई सोलह, कोई तीन, कोई, पांच, कोई आठ कोई सात कहता है, इस विरोध का क्या कारण है' ? भगवान् ने कहा 'हे उद्धव ! वास्तव में विरोध कुछ नहीं है, बात यह है कि जिसने एक तत्व को दूसरे तत्व में मिला कर समझा है, उसकी गणना में तो कम हैं और जिसने अलग २ करकेसमझा है, उसकी गणना में अधिक हैं। जैसे जिस किसी ने ईश्वर, माया और जीव को अलग२ जाना है उसकी गणनामें तीन हैं, जिस ने माया को भगवान् की इच्छा समझा है, उसकी गिनती में दो हैं। जिसने तीनों तत्व में महतत्व, अहंकार और पंच महाभूतों को अधिक किया, उसकी गिनती में दश हैं। इस प्रकार छयानवें तक संयोग पहुंच गया है (वराहोपनिषत् १ । १५)

दूसरा दृष्टांत यह है: किसी ने वटके वृक्ष को देखकर कहा कि दो शाखा वाला है। किसीने चार शाखा देखी थी उसने चार शाखा वाला बताया। वास्तव में वट एक है, इसी प्रकार यह भक्ति एक है। मनकी लगन के अनुसार कई प्रकार की दिखानी पड़ती है। तात्पर्य सबका यह है कि कोई किसी प्रकार से, किसी लाभ के निमित्त, किसी विधान से करे। अनुराग का होना मुख्य प्रयोजन है। जब तक प्रीति सिद्ध पद को नहीं प्राप्त होती तब तक साधन रूप है और जब स्थायी भाव को प्राप्त हो जाती है, तब वह ही फल रूप है। वह ही भक्तिकी पराकाष्ठा है, यह ही जीवन मुक्ति है। यह ही मनुष्य जन्मका परम प्रयोजन है। इसका नाम परम पुरुषार्थ है। जिसने यह परम प्रयोजन सिद्धकरलिया, उसने ही मनुष्य जन्म को सार्थक किया है।

भगवद्भक्तों की महिमा।

हे मंसाराम ! उपरोक्त किसी प्रकार की भक्ति करने वाले भक्त भगवान् के प्यारे होने से भगवान् स्वरूप ही हैं। ऐसे भक्त भगवान् के समान पूजने योग्य हैं। भक्तों की महिमा अपार है, कोई वर्णन नहीं कर सक्ता। जिस कुल में भक्त का जन्म होता है, वह कुल धन्य है, भक्त के माता पिता धन्य हैं, जिस देश में भक्त का निवास हो, वह देश धन्य है, जिस काल में भक्त का जन्म होता है, वह काल पूजनीय है। जहां भक्त रहता है, वहां का वायु शुद्ध

हो जाता है, भक्त के आस पास दूर २ तक शांति रहती है, भक्त के सत्संग से दुराचारी सदाचारी हो जाते हैं। जगत् में माता पिता के समान कोई हित कर नहीं होता परन्तु भक्त उनसे भी विशेष हित कर होते हैं क्योंकि माता पिता तो केवल शरीरका ही पालन पोषण करते हैं और भक्त तो मनुष्य के अंतःकरण को शुद्ध करके अखंड सुख स्वरूप परमात्मा से मिला देते हैं। भक्तोंकी कृपा से दैत्य देवता बन जाते हैं और भक्तों की कृपा बिना देवता भी कल्याण मार्ग से गिर जाते हैं। देखो, प्रह्लाद दैत्य कुल में थे, फिर भी नारद जी की कृपा से नृसिंह भगवान् के कृपा पात्र बने और जय विजय भगवान् के द्वारपाल होने पर भी सनकादि की अकृपा से अपने पद से भ्रष्ट हुवे, तीन जन्म तक उनको दैत्य देह धारण करना पड़ा, भागवत् से यह प्रसिद्ध है। सूर्य, चन्द्र आदि दिग्पाल जीव को मात्र भोग्य पदार्थ देते हैं और भक्तों की कृपा से तो मोक्ष पद की प्राप्ति होती है इसलिये सूर्यादि से भी भक्त बड़े हैं। गुरु की महिमा शास्त्रों में विशेष वर्णन की है परन्तु गुरु पदकी प्राप्ति भक्तोंकी कृपाके अधीन है इसलिये गुरु से भक्तों का दर्जा बड़ा है। ब्रह्मा विष्णु, महेश भी भक्तोंकी कृपासे भक्ति करके ही हुये हैं। इसलिये भक्त उनसे भी श्रेष्ठ हैं। भागवत् में भगवान् ने स्वयं कहा है कि मैं भक्तों के आधीन हूं, और भक्त स्वतंत्र हैं। एकादश स्कंध में लिखा है कि संसार समुद्र में डूबने उछलने वालों के लिये भगवद्भक्ति नौका समान है और भक्त मल्लाह के सदृश हैं। पद्मपुराण में भगवन् का वचन है कि जो मेरे भक्तों के भक्त हैं, वे मेरे ही भक्त हैं, उनका पूजन मेरे समान ही करना चाहिये। गोसाईं जी का वचन है:-

चौ०-विधि हरि हर कवि कोविद बाणी।
कहत साधु महिमा सकुचानी।

जिस किसीको जो पदवी प्राप्त हुई है सत्संगही से प्राप्त हुई है। इसलिये ही ब्रह्मादि की वाणी भगवद्भक्तोंकी महिमा कहनेमें सकुचाती है। एकबार विश्वामित्र और पर्वत ऋषि में विवाद हुआ। विश्वामित्र तप को बड़ा कहते थे और पर्वत ऋषि सत्संगको श्रेष्ठ बताते थे। बड़े २ देवता भी निर्णय न कर सके। अंत में दोनों शेषजी के पास गये और उनको पंच बनाया। शेषजी बोले 'भाइयो! मैं तुम्हारा फैसला तो कर दूंगा परन्तु मेरे सिर पर बोझ रक्खा हुआ है, मेरा बोझ उतर जाय तो मैं स्वस्थ होकर तुम्हारे प्रश्न के संबंध में विचार करूं, जो तुम में से समर्थ हो पृथिवी को शिर पर रखले पीछे मैं तुम्हारा निर्णय कर दूंगा'। विश्वामित्र ने कई लाख वर्षों के तप का फल बल्कि जन्म भर के तप का फल लगा दिया परंतु पृथिवी न उठा सके। पर्वत ऋषि के एक मुहूर्त के सत्संग का फल लगाने से पृथिवी ठहर गई और इसीसे निर्णय हो गया कि सत्संग की महिमा अपार है। सत्संग ही आनंद देने वाला है, सत्संग फल है और सब साधन फूल हैं। जिन के संग की इतनी महिमा है, उनकी महिमा का क्या कहना है। दुराचारी से भी दुराचारी भगवद्भक्तों के संग से सुधर जाते हैं। एक कवि ने यह जानना चाहा कि सब में कौन बड़ा है, जो बड़ा हो, उसी का महत्व मैं वर्णन करूं। प्रथम उसने पृथिवी को सबसे बड़ा निश्चय किया क्योंकि पृथिवी ही सबका भरण पोषण करती है, और उसी ने सबको धारण कर रक्खा है। पीछे उसने शेष नाग को बड़ा समझा क्योंकि शेष नाग पृथिवी को अपने शिर

पर धारण कर रहे हैं, इसलिये वे ही बड़े हुये। फिर उसने सोचा कि शेषजी से भी बड़े शिवजी हैं क्योंकि उन्होंने शेष नाग को एक अंग में धारण कर रक्खा है इस लिये शिवजी शेषजी से भी बड़े हैं। फिर विचार किया कि शिवजी कैलाश में रहते हैं इसलिये कैलाश उनसे भी बड़ा है। फिर सोचा कि कैलाश तो विश्व का एक अंश है, इसलिये विश्व को उत्पन्न करने वाले ब्रह्मा जी बड़े हैं। कुछ और विचारने से मालूम हुआ कि ब्रह्मा तो विष्णु भगवान् की नाभि में से उत्पन्न हुये हैं इसलिये विष्णु भगवान् सबसे बड़े हैं। यह निश्चय भी उसका यथार्थ न ठहरा। उसने विचारा कि विष्णु भगवान् तो भक्तों के हृदय में वास करते हैं इसलिये जो अपने हृदय में भगवान् को रोक रखते हैं, भगवान् जिनके अधीन हैं, वे भगवद्भक्त ही सब से बड़े हैं इसलिये मुझे उनका महत्व ही वर्णन करना चाहिये। हे मंसाराम! इस सब कहनेका तात्पर्य यह है कि भक्तों की महिमा कहने सुनने से बाहर है, कोई कह नहीं सक्ता। जो भगवन् सच्चिदानन्द स्वरूप, शुद्ध, मुक्त अक्रिय, निष्कल, निरंजन हैं वे ही जिन भक्तों के आधीन होकर लीलावतार धारण करके अनेक प्रकार की विचित्र लीलायें करते हैं उन भक्तों की महिमा कौन कह सक्ता है! कोई नहीं कह सक्ता! हे मंसाराम तू धन्य है, जो तूने भक्ति महारानी का स्वरूप पूछा है, मैं भी धन्य हूं जो भक्तिका स्वरूप और भक्तों की कथायें वर्णन करूंगा। क्योंकि जैसे भगवन् के चरित्र पाप के नाश करने वाले हैं इसी प्रकार भक्तों के चरित्र भी जन्म जन्मांतर के पापों को भस्म कर देते हैं इस लिये तू श्रोता और मैं वक्ता दोनों धन्य हैं! आज से तू और मैं मिल कर भक्तों की कथायें, भक्ति का स्वरूप विभाग तथा भगवन का स्वरूप इसी का वर्णन किया करेंगे! जब तक जीना तब तक सीना! कुछ न कुछ करना तो पड़ेगा ही, तब भगवन् और भगवद्भक्तों के गुण गान करना ही अच्छा है। इसी में मेरा तेरा कल्याण है। वेदों का समझना कठिन है, छओं शास्त्रों में बाल की खाल निकाली है, उनका पढ़ना झंझट में पड़ना है, ज्ञान के साधन बहुत कठिन हैं, विवेक, वैराग्य, शमादि तथा मुमुक्षुता होना कठिन है, श्रवण, मनन, निदिध्यासन, इससे भी कठिन हैं, इनके लिये सूक्ष्म बुद्धि चाहिए, हम तुम ग्राम के रहने वाले, थोड़ा पढ़े लिखे मोटी समझ के हैं ज्ञान के साधन हम तुम से न हो सकेंगे। योगी भी होना कठिन है क्योंकि मन तो वश में है ही नहीं, कमर टूटी कमजोर शरीर है, सीधा बैठना ही दुर्घट है, फिर यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि कैसे होगी? महात्माओं की सेवा करने से कल्याण हो सक्ता है, परंतु उनके पास पहुंचना कठिन है, प्रथम तो वे निस्पृही ही होते हैं, अपने पास किसी को आने ही नहीं देते और दूसरे भाई मंसाराम! तुझ में अभिमान बहुत है और मुझमें तुझसे भी अधिक है इसलिए उनकी सेवा हम तुम से नहीं हो सकेगी। तीर्थ यात्रा यज्ञ दानादि करने को धन और बल चाहिए। सो दोनों नहीं हैं भूखे भी मरा नहीं जाता इसलिए उपवास आदिभी नहीं कर सके! अब तो मन वाणी से भगवन् और भगवद्भक्तों की शरण लेना ही सर्वोत्तम है! उन्हीं की गाथाएं कहा सुना करेंगे, और मन बहिलाया करेंगे।

नहीं भक्ति सम अन्य, श्रेय करणि भवभय हरणि
भक्ति करें ते धन्य, भोला प्रिय हरि हर यथा।

हनुमान् का भीम को उपदेश

ले० श्रीमती सूरजदेवी

एक समय पांडव अर्जुन के वियोग में बैठे हुये थे, ईशान कोण से वायु प्रवाहित हो रहा था, वह वायु एक सहस्र पंखडियों वाला दिव्य कमल उड़ाकर जहां पाण्डव बैठे थे वहां ले आया ! उस सुगन्धित दिव्य कमल को देख कर द्रौपदी ने भीमसेन से कहा हे भीमसेनजी ! इस दिव्य, अत्यन्त अनुपम, सुगन्धि तथा सौन्दर्य वाले पुष्प ने मेरे मन को आनन्दित कर दिया है, मैं यह पुष्प तुम्हारे पूज्य भ्राता धर्मराज को दूंगी, और हे परन्तप ! काम्यक वनमें ले जानेके लिये कुछ और भी पुष्प लाओ। हे भीमसेन ! यदि मैं तुम्हें प्रिय हूं तो ऐसे बहुतसे पुष्प लाइये द्रौपदी उस पुष्पको धर्मराज के पास लेगई और भीमसेन अपनी प्रिया काआशय समझ तत्त्क्षण धनुष बाण लेकर उसी दिशा को चल दिये जिधर से पुष्प आया था। द्रौपदी के प्रिय कार्यके लिये वह शोक मोहको छोड़ गुल्मलताओं से आच्छादित, किन्नरोंके निवास स्थान पर्वतपर विचरने लगा। वह गन्धमादन पर्वत ऐसा प्रतीत होता था मानो पृथिव ने सुवर्ण, चान्दी वृक्ष, पशु, पक्षी, आदि से विभूषित अपना हाथ ऊपर किया हुआ है, वह सब ऋतुओं में सुखदायक था। पवन पुत्र भीमसेन उसका दृश्य देखता हुआ आगे चला ! उस पर्वत की शीतल मन्द सुगन्ध पवन ने भीम की थकावट हरली और वह उससे मोहित सा हुआ चला जाता था। शत्रु दमन भीम उस पुष्प के लिये यक्ष, गन्धर्व, देवता तथा ब्रह्मर्षियों से सेवित पर्वत पर विचरनेलगा। फिरते २ उसे दुर्योधन दत्त दुःखोंकी यादआई और वह विचारने लगाकि अर्जुन तो स्वर्गमें है, मैं यहां हूं अतः पूज्य भाई युधिष्ठिर अकेले क्या करते होंगे। सो यदि मुझे पुष्प शीघ्रही मिलजांय तो अच्छा हो। ऐसा विचारकर वह पवन के समान द्रुतगति से चलने लगा। शीघ्र गमन से वृक्षों की लताओं को तोड़ता जाता था। और गर्जना करता था। उसकी भयंकर गर्जना को सुन कर गुफाओं के बाघ डर कर भागने लगे, वनवासी प्राणी डर गये पक्षी उड़ने लगे, मृगों के झुंड तितर बितर होगये, रीछ डर के मारे वृक्षों को तोड़ २ भागने लगे केसरी जबाड़े चाटने लगे। हाथी हथनियों को त्यागकर भागने लगे, शूकर मृग भैंसे डकराने लगे, कोयल, चक्रवाक, पपैया हंस भी अपनी दुःस्वर वाणी करते हुये इधर उधर भागने लगे। शेर, बाघ, हाथी, भीमसेन की तरफ दौड़े तो भीमसेन एक हाथी की टांग पकड़ कर पछाड़ने लगा और सिंहों तथा अन्य भयंकर जीवों को मारने लगा। इस भांति वनके जानवरों का मर्दन करता हुआ भीमसेन काले कमलों के वनमें आया। और अपनी पूरी शक्ति के अनुसार शंख

बजा कर तथा दोनों भुजाओं को फटका कर दिशाओं को गुंजार दिया। वन के पशु इधर उधर चिंघाड़ते हुये भागने लगे तो उस वनमें निवास करने वाले हनुमानजी ने जाना कि मेरा भाई भीम आया है।

हनुमान ने विचारा कि भीम इस मार्ग से न जाय तो अच्छा है, यह सोच वह मार्गको रोककर बैठ गये, उनके रोकनेका कारण यह था कि स्वर्गमें जानेमें मेरे भाई का तिरस्कार कोई न करदे तथा कोई शाप न दे दे। हनुमान जी केले के वनमें लेटे २ सोगये बीच २ में हनुमान जी पूंछ को फटकारते जाते थे, उस पूंछ की फटकार की महाध्वनी सुन कर भीमसेन के रूयें खड़े होगये और वह कदली वनमें खोजने लगा कि यह क्या है? तब खोजते २ भीमने हनुमानको बैठे देखा। उनका शरीर मोटा तथा बलवान् था वह हिमालय के समान मार्ग रोके पड़ा था। भीमसेन निडर उसके पास गया और भयंकर सिंहनाद करने लगा। हनुमान जी ने भीम की तरफ तिरस्कार युक्त नेत्रों से देख कर कहा कि-अरे ओ। मैं रोगी हूं सुख से सोता था तूने मुझे क्यों जगा दिया? अरे तेरे समान, बुद्धिमान पुरुष तो प्राणियों के ऊपर दया करते हैं. हम पशुजातिमें हैं अतः हमको धर्मके तत्वका ज्ञान नहीं है, परन्तु मनुष्य तो बुद्धिमान् होते हैं। तेरे समान मनुष्य धर्म का नाश, तथा मन, वाणी को अपवित्र करने वाले क्रूर कर्ममें कैसे प्रवृत्त हुआ। तुझे धर्म का ज्ञान नहीं है, तूने विद्वानों की सेवा भी नहीं की है, तू अल्प बुद्धि है। बोल तू कौन है? जो निर्जन वनमें आया है। हे श्रेष्ठ पुरुष! तू कौन है और आगे अगम्य पर्वत है अतः आगे नहीं जा सकता है। मैं तुझे हितकर बात कहता हूं तू मधुर कंदों को खाकर लौट जा वृथा कालका ग्रास मत बन।

बुद्धिमान् वानर राजकी बात सुन भीमने कहा तुम कौन हो और क्यों वानरशरीर धारण किया है। हनुमान जी मुस्करा कर बोले मैं तुझे आगे जाने का मार्ग नहीं दूंगा अतः लौट जा। भीम ने कहा- मैं अवश्य आगे जाऊंगा भले ही मेरा नाश हो जाय तुम मार्ग देदो अन्यथा कष्ट पाओगे। हनुमानजी ने कहा- मैं व्याधिग्रसित हूं उठने में असमर्थ हूं अतः मुझे लांघ कर चला जा। भीम ने कहा परमात्मा निर्गुण है सब देहों में व्याप्त है अतः अन्तर निवासी जगदीश को मैं उलघंन नहीं करता। यदि मैं वेद शास्त्र को नहीं जानता तो तुमको उसी प्रकार उलांघ जाता जैसे हनुमान जी समुद्र को लांघ गये थे। हनुमान जी ने कहा- हे नर श्रेष्ठ! जिसने समुद्र लांघा था वह कौन था। भीमसेन बोले-पवन कुमार हनुमान जी मेरे बड़े भ्राता हैं उन्होंने सीता माता की खोज के लिये समुद्र को लांघा था, मैं भी उन्हीं की भांति बलशाली हूं तुमको दण्ड देने में समर्थ हूं। हनुमान जी हंस कर बोले-जरावस्था के कारण मैं बल हीन हूं अतः तुम मेरी पूंछको दूर करके चले जाओ। भीमसेन ने घमंड में आकर हनुमानजी की पूंछ एक हाथ से उठाई परन्तु जब वह नहीं उठी तो दोनों बाहुओं से उठाने लगा, परन्तु पूंछ टस से मस नहीं हुई। भीम सेन का शरीर पसीने और क्रोध से परिपूर्ण होगया, फिरभी अनेक उपायों से पूंछ को उठाने का प्रयत्न किया, परन्तु सब निष्फल हुआ। लज्जा से अवनत मुख से भीमसेन हाथ जोड़ कर बोले कि हे वानर राज! तुम कौन हो? यह मेरी जानने की इच्छा है। आप सिद्ध हैं? देवता हैं? गन्धर्व वा गुह्यक हैं? यदि गोपनीय कोई वार्ता न हो तो मुझे बतलाइये। हनुमानजी ने कहा अंजनी

नन्दन, सुग्रीव का सखा, श्री रामचंद्रजी का हनुमान नामक दास हूं। जब रावण जग जननी जानकी को हर लेगया था तब मैं शत योजन पयोधि को उलंघन करके सति सीता की सुधि लाया था। फिर श्रीरामचन्द्रजी सेतु बांध सेना समेत लंका में जा, रावणको रणक्षेत्र में सुला रामजी प्रियपत्नी सीताजी के सहित अपनी राजधानी अयोध्या में आये। तब गुरु वशिष्ठजी ने उनका राज्याभिषेक किया उस समय मैंने कमल नेत्र के चरण कमलों में प्रणाम करके यह वर मांगा कि हे राजीवलोचन! प्रणत दुःख भंजन प्रभो! जब तक वसुन्धरा पर आपकी पवित्र कथा रहे तब तक मैं भी भक्ति का रसास्वादन लेने के लिये जीवित रहूं यह वर दीजीये। दीनार्त्तहारिन राघव ने तथास्तु कहा। हे कुन्ती नन्दन! जब से श्रीरामचन्द्रजी स्वधाम को गये हैं तब से मैं यहीं रहता हूं गन्धर्व अप्सरा नित्य यहां आकर भगवद् कीर्तन करते हैं यहां से आगे देवताओं की गति है मनुष्यों की नहीं। तुझको कोई शाप न देदे इसी लिये मैं मार्ग में आ बैठा था तू जिन कमलों के लिये आया है वह सरोवर यह सामने है। भीम ने केसरी नन्दन अपने भ्राताको प्रणाम कर अपने को कृतकृत्य समझ कर कहा कि मेरे सामान कोई भाग्यशाली नहीं है क्योंकि मुझे श्रीरघुनन्दन के भक्त तथा अपने पूज्य ज्येष्ठ भ्राता के दर्शन हुये हैं। भीम ने फिर प्रणाम करके कहा कि हे वानरराज! मैं मशक समान आपका रूप देखना चाहता हूं हनुमान ने हंस कर कहा कि वह रूप मेरा कोई नहीं देख सक्ता। उस समय काल की अवस्था दूसरी थी, जब तो त्रेतायुग था और अब द्वापर युग है। पृथ्वि, नदी, पर्वत, सिद्ध, देवता और महर्षि युग युग के भावानुसार समय का अनुसरण किया करते हैं। तू उस इच्छा को त्याग दे तब भीम ने कहा कि हे वीर! युगों के वर्षों की संख्या, युग २ के आचार, धर्म, अर्थ और काम के तत्व, शुभाशुभ कर्म के फल और विनाश तथा उत्पत्ति सुनाइये। हनुमानजी बोले कि हे तात! युगों में आदि युग सत्युग है, उसमें सनातन धर्म चलता है यही श्रेष्ठ युग है। उस समय धर्म की तथा सुख की वृद्धि रहती है। सत्युग में दैत्य, सर्प, यक्ष और राक्षस नहीं होते, क्रय विक्रय व्यवहार नहीं होता, वेदों की भिन्न २ क्रियायें तथा वर्ण भेद भी नहीं होता है, संकल्प से सब वस्तुओं की प्राप्ति होती है धर्मों में सन्यास धर्म श्रेष्ठ गिना जाता है। उस समय सब मनुष्य व्याधि, ईर्ष्या इन्द्रिय क्षीणता, गर्व, कपट, तंद्रा, द्वेष, भय, सन्ताप और मत्सरता से रहित होते हैं। सत्युग में सब ईश्वर का आश्रय रखते हैं वेद को मानते हैं, कर्मठ न बन कर ज्ञान पर ही निष्ठा रखते हैं। इस प्रकार परब्रह्म में अभेद कराने वाला धर्म जब लोकों में चलता है तब जानो सत्युग है। त्रेतायुग में यज्ञ किये जाते हैं धर्म, कर्म, यज्ञ विधि की क्रियायें भी चलती हैं। मनुष्य संकल्प के अनुसार दान धर्म करके फल प्राप्तकरते हैं। दान, तप आदि स्वधर्म का पालन करते हैं, इस भांति त्रेतायुग कर स्वरूप है। अब द्वापरयुग सुनो, द्वापर में धर्म के दो चरण अवशेष रहते हैं, एक वेद के चार वद किये जाते हैं। कुछ मनुष्य चारों वेदों को पढते हैं बहुत मूढ पुरुष वेदको पढ़तेही नहीं। अनेक शास्त्र रचे जाने से क्रियायें अनेक हो जाती हैं, प्रजा तप और दान में तत्पर हो रजो गुणी हो जाती है। एक वेद के पढने की शक्ति कम हो जाने से वेद चार वेद स्वरूपतव

जाता है। मनुष्य मिथ्या भाषण तथा व्याधियों से ग्रसित हो जाते हैं। वह सुख और स्वर्ग की इच्छा से यज्ञ करते हैं। द्वापर युग के अन्त में कलियुग का उदय होता है, इसमें एक ही धर्म का चरण शेष रहता है। इसमें वेदोक्त आचार समाचरण, तथा यज्ञादि लोप होजाते हैं और ईतिभीति, आदि, दुष्काल, व्याधि, तंद्रा, क्रोध, दोष और क्षुधा का भय चारों ओर फैल जाता है। हे तात! युग के क्षय होने से धर्म का क्षय हो जाता है धर्मके क्षय से लोकों का क्षय होता है। फिर कलियुग में कोई धर्म कर्म की सिद्धि नहीं होती। विधि पूर्वक कर्म का भी विपरीत परिणाम होता है। यह मैंने तुम्हें युगों का क्रम सुनाया है। तब भीम ने कहा कि जो कुछ मैंने पूछा था वह आपने सुनादिया परन्तु मैं आपके रूप के दर्शन किये बिना कदापि नहीं जाऊंगा। तब हनुमान ने अपने शरीर को बढाया उससे सारा कदली वन ढक गया भीम अपने भाईका स्वरूप देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ हनुमान ने कहा मेरा शरीर शत्रुओं के सामने बहुत बढ़ता है, और मुझमें इच्छानुसार शरीर बढ़ाने की शक्ति है। हे भीम. सौगंधिक नाम के वन का मार्ग यही है अब तू जा और नीति अनुसार कार्य करता हुआ फूल लाना, मनुष्यों को देवताओं का विशेष आदर करना चाहिये! अतः तुम्हें अपने धर्म का आचरण करना चाहिये। वृहस्पति के समान महापुरुष भी वृद्धों की सेवा बिना धर्म के विषय को नहीं जान सके। किसी समय सत्य भाषण भी असत्य होजाता है और किसी समय अधर्मका कार्य भी धर्म का कार्य हो जाता है। यह धर्माधर्म का भेद जानना बड़ा आवश्यकीय है।

आचार सम्भवो धर्मो धर्मे वेदाः प्रतिष्ठिताः।
वेदैर्यज्ञाः समुत्पन्ना यज्ञैर्देवाः प्रतिष्ठिताः॥

आचार से धर्म, धर्म से वेद, वेदसे यज्ञ और यज्ञसे देवता सन्तुष्ट होते हैं। सब मनुष्यों को अपने अपने वर्णानुसार धर्माचरण करना चाहिये आत्मज्ञान सम्पादन करना, यज्ञ, अध्ययन और दान करना ब्राह्मण के धर्म हैं। प्रजा का पालन करना राजा का मुख्य धर्म है। पशुपालन वैश्य का मुख्य धर्म है ब्राह्मणादि तीनों वर्णों की सेवा करना शूद्रका मुख्य धर्म है ऐसा कहा है। अतः हे कौन्तेय! रक्षा करना तेरा धर्म है। अब मैं तुम्हें कुछ राजधर्म और सुनाऊंगा। हे भीम! जो राजा बुद्धिमान् मंत्रियों की सलाह लेकर राज्य करता है वही राज्य कर सकता है। व्यसनी राजा राज्य नहीं कर सकता। राजा को प्रजा के सुख दुःख का समाचार दूतों द्वारा नित्य सुनना चाहिये। साम, दान, भेद, दण्ड, दूतबुद्धि, शुभविचार, पराक्रम, शिक्षा, अनुग्रह और चतुरपन इतने कर्मों से राजा के कार्य सिद्ध होते हैं। हे पृथापुत्र! यह मैंने तुमसे राज धर्म कहा है। तू विनयके साथ अपने धर्मका पालन करना। भीम अपने भाई से ब्राह्मणधर्म, राज्यधर्म, वैश्यधर्म, शूद्रधर्म और युगों के चरित्र सुनकर अति प्रसन्न हुआ। हनुमान जी बोले कि हे भाई! मैं यहां रहता हूं यह किसी से न कहना और तुम्हें कुछ वरदान मांगना हो तो मांग ले तू कहे तो दुर्योधनादि को मार डालूं अथवा उन पर उपलों की वृष्टि कर दूं, वा दुर्योधन को पकड़ कर तुम्हें सौंप दूं यह सुनकर भीमसेन ने कहा, हे वीर्यवान! मैं दर्शन से ही सनाथ हूं आपकी कृपा से शत्रु का नाश हम ही कर देंगे आप मेरे ऊपर प्रसन्न रहें यही मैं वर मांगता हूं। हनुमानजी

ने कहा कि तू मेरा प्यारा भाई है, अतः युद्धमें जब जब तू सिंहनाद करेगा तब २ मैं भी अर्जुनकी ध्वजा पर बैठा हुवा सिंहनाद करके तेरी दहाड़ को बढ़ाऊंगा ऐसा कह कर पवनपुत्र अन्तरध्यान होगये।

श्रीमद्भगवद्गीता

भाषा छन्दाबद्ध

[ले॰ श्री॰ पूज्य महादेव सरस्वती]

अथ प्रथमोऽध्यायः

धृतराष्ट्र उवाच।

हे संजय ! एकत्रदल कुरुक्षेत्र पुण्य स्थल महा।
युद्ध इच्छुक पाण्डुसुत अरु पुत्र मम कीन्हों कहा॥१

संजयउवाच।

देखि सयना पांडवन की खड़ी व्यूह रचाय के।
कह्यो दुर्योधन नृपति आचार्य्य पहं अस जाय के॥२
पांडु सुत की महत सयन विलोकि गुरु मन लाय के।
द्रुपद सुत तब शीष्यधी मन रचेउ व्यूह बनाय के।३
शूरवीर महाधनुर्धर भीम अर्जुन से यहां।
युयुधान द्रुपद महारथी पुरुजित विराटहु हैं जहां॥४
शैब्य नरपुंगव महाबल काशिराज विराज हीं।
धृष्टकेतु चेकितान कुन्ति भोजहु राजहीं॥ ५॥
वीर्यशाली उत्तमौजा युधामन्यु महाबली।
अभिमन्यु द्रुपदी सुवन सब ही महारथ सयना भली॥
द्विज श्रेष्ठ जो जो मुख्य नायक सयन के मम ओर हैं
नाम तिनहूं के सुनो चितलाय हम वर्णतअ हैं॥ ७॥
आपु भीष्म कर्ण कृप रण जीत अश्वत्थाम हू।
और शूर अनेक ममहित छोड़ि जीवन काम हू॥८॥
सकल युद्ध प्रवीन नाना शस्त्र चालन हार हैं।
यहि भांति भीष्म स्वयंरक्षत बल हमार अपार है॥
पर्याप्त बल है पांडवन कर भीम रक्षित जानिये।
सब ओर ते तुम सकल मिलिके भीष्म रक्षा ठानिये॥
तेहि काल वृद्ध कुरु पितामह सिंह नाद सुनाइयां।
शंख फूंकि प्रतापशाली कुरुपतिहिं हर्षाइयां॥ ११॥
तेहि साथ गोमुख शंख आनक पणव भेरि सुहावने।
लगे बाजन सकल सहसा शब्द तुमुल मचावने॥१२।
श्वेत हय युत महत स्यन्दन कृष्ण अर्जुन सोहई
शंख दिव्य बजाय निज निज मन हुं प्रत्युत्तर दई।१३
पांचजन्यहि कृष्ण अर्जुन देवदत्त अधरधरा।
महापौंड्रक शंख फूंकेउ भीम कर्म वृकोदरा॥ १४॥

शंख नाम अनन्त विजयहिं नृप युधिष्ठिर बाजऊ ।
सुघोष मणिपुष्पक नकुल सहदेव हू तब नाथऊ ॥१५॥
काशिराज महाधनुर्धर अरु शिखंडि रथीमहा ।
धृष्टद्युम्न विराट सात्यकि वीर अपराजित रहा ॥१६
द्रुपद द्रौपदि पुत्रओ अभिमन्यु बलशाली रह्यो ।
पृथक पृथक बजाय निजनिज शंख कौतूहल बढ्यो
सो तुमुल ध्वनि चहूं ओर से नभ भूमि खल बल पारेऊ
धृतराष्ट्र पुत्र समूह सुनि सो शब्द हृदय विदारेऊ १८
अवलोकि कौरवदल व्यवस्थित शस्त्रचालन तत्परा ।
कपिध्वज पांडव महीपति कृष्ण सों बोलेउ गिरा ॥१९

अर्जुन उवाच

हे अच्युत ! रथ मोर दोउदल बीच ठाढ़ो कीजिये ।
युद्ध इच्छुक इन सबन कहं मोहिं देखन दीजिये ॥२०
संग्राम महं हैं कौन ये जिन संगमोहिं लड़नो चही ।
दुर्बुद्धि कुरुपति प्रीति इच्छा जो इहां आये सही ॥

संजय उवाच ।

यहि भांति हे भारत ! जबहिं अर्जुन वचन बोलत भयो
उभय सयना बीच केशव लाय रथ ठाढो कियो ॥२२
द्रोण भीषम सकल नृप के सामने ऐसे कहा ।
देखिले अर्जुन एकत्रित कौरवों को तू यहां ॥ २३ ॥
तहं दीख अर्जुन निज पितामह पितृवृद्ध समाज हीं ।
आचार्य मातुल मित्र बन्धू पुत्र पौत्र विराज हीं ।
श्वसुर सम्बन्धी सुहृद् निज उभय सयन निहारि के ।
परम करुणाव्याप्त अर्जुन कहत उर दुखःधारि के ।२५

अर्जुन उवाच

युद्ध इच्छुक स्वजन ये हे कृष्ण ! जुरि मिलि आइयां
शिथिल गात्र विलोकि इन कहं बदन मोर सुखाइयां ।
होत कम्प शरीरमें मम रोम ठाढ़े ह्वै गये ।
गाण्डीव करगों खसन चाहत दाहतन उपजत भये ॥
ठाढोनहिं रहि जात मोपै भ्रमति अस मन मोर है ।
यहि भांति केशव सकल लक्षण मोहि दीखत और है
स्वजन रण महं मारि केशव श्रेय कछु न दिखात है ।
विजय कृष्ण न मोहि चहिये राज सुख न सुहात है ॥
राज्य ते का लाभ हे गोविन्द ! मोहि बताइये ।
भोग सुख सम्पत्ति जीवन हू हमैं नहिं चाहिए ॥३०॥
जेहि हेत हम कहं राज्य सुख बहु भोग की इच्छा रही
ते सकल ये धन प्राण आशा छोडि यां ठाढे सही ३१
आचार्य्य मातुल श्वसुर श्याला पुत्र पौत्र पितामहा ।
पितरगण कुल वृद्ध औरो ज्ञात सम्बन्धी कहा ॥३२॥
इन्हैं मैं नहि हनन चाहत राज्य त्रिभुवन हू मिले ।
मही मधुसूदन कहा है मोही वे मारें भले ॥ ३३ ॥
कौरवन कंह हति जनार्दन काह मम उपकार है ।
यद्यपि हैं ये आततायी वधे पाप अपार है ॥ ३४ ॥
तस्मात् अपने बन्धु कौरव वध हमें नहीं सोहई ।
स्वजन हति केहि भांति माधव सुखी हम सब होवई ॥
लोभ बस नहि इनहि सूझत यद्यपि बुद्धि नशान है ।
वंश क्षय कृत दोष पातक मित्र द्रोह महान है ॥३९॥
कुलक्षय कृत दोष यद्यपि हमहि प्रकट दिखात है ।
केहि विधि जनार्दन हमनपै सो अघ बिसारो जात है ॥
यहि वंश क्षयते कुल सनातन धर्म सब मिटजाई हैं ।
मिटे धर्म सकल कुलहि अधर्म धाक जमाई हैं ॥३८
कुलवान युवती होहिं दूषित जब अधर्म विकार है ।
भये दूषित त्रियन के वर्णसंकर कार है ॥ ३९ ॥
कुलघातकों के वर्णसंकर कार दूषण से सदा ।
जाति औ के कुल पुरातन धर्म छीजत हैं तदा ॥४०॥
सुनत आये हम जनार्दन बड़े बूढों से यही ।
छिन्न हैं कुल धर्म जिनके नरक सो जाते सही ॥४१॥

अहो कैसो पाप भारी करन हम ठानत भये ।
राज्य सुख के लोभ काजे स्वजन मारन चित दये ४२
याकी अपेक्षा अधिक मो कल्यान याम भासई ।
निःशस्त्र अप्रतिकार मोको शस्त्र लै ये नाशई ॥४३॥

संजयउवाच ।

रण भूमि में इमिभाषि अर्जुन व्यथित शोक महान में ।
धनुष बाणहि डारि रथ में बैठ निज स्थान में ॥ ४४॥

श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन सम्वादे अर्जुनवि
षादयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः ।

भक्ति

[ले० श्री० पं० रघुनाथ स्वामी नरेला]

अचला केशवे भक्ति मंनस्त्वच्चरणाम्बुजे ।
चक्षुस्त्वद्दर्शने नित्यं देहि मे मधुसूदन ॥ १ ॥
दो०—अचल भक्ति भगवान् ये मन चरणों में भोय
चक्षु नित दर्शन करें भक्ति भाव तब होय ॥२

'भक्त्या अनिर्वचनीयं प्रेम स्वरूपम्'

भक्ति का अनिर्वचनीय प्रेम स्वरूप है, गूंगे के गुड़ के स्वादकी भान्ति उसका आनन्द वाणी से वर्णन नहीं किया जासकता । चित्तके मल छूटजाने पर तथा परमेश्वर में चित्त लग जाने पर जो परमानन्द प्राप्त होता है उसको स्वयं आत्मा अन्तःकरण से ही ग्रहण करता, है इस भक्तिके प्रेमानन्द स्वरूपको प्रेमी जनही प्राप्त हो सकते हैं और उनके द्वारा ही भक्ति का प्रेमामृत बह निकलता है ।

यथा व्रजगोपिकानाम् ।

जैसे व्रज की गोपियों में:-

उनके तप को मैं कथा कहूं लोक लाज दई तोड़ ।
कृष्ण २ रटती फिरे मन को लीन्हा मोड़ ॥

'तदर्पिता खिला चारिता तद्विस्मरणे परं व्याकुलता'

अपने सम्पूर्ण कर्मों को भगवत के अर्पण कर देवे और उस के विस्मरण में परम व्याकुलता होवे तो जानो कि मेरे भीतर भक्ति का समुद्र उमड़ रहा है:-

चित्त द्रवीभूत होकर हर्ष से रोमाञ्चित हो जाता है और नेत्रों से आनन्दाश्रु बह निकलते हैं ऐसे भक्त ही लोकों को पवित्र करने वाले होते हैं जैसे सुधन्वा भक्त को तप्त तैल में तपाये जाने पर भी हरि नाम का त्याग न किया ।

क्वचिद्रुदन्त्यच्युत चिन्तयाक्वचि-
द्धसन्ति नन्दन्ति वदन्त्यलौकिकाः ।
गायन्ति नृत्यन्त्यनुशीलयन्त्यजं
भवन्ति तूष्णीं परमेत्यनिर्वृताः ॥ भा० ॥

भक्त कभी भगवत वियोग (विस्मरण) जनित दुःख से विह्वल होकर रुदन करता है, कभी अलौकिक स्वरूप साक्षात् कर हंसने लगता है, कभी स्मृद्धि को प्राप्त होता है, कभी अलौकिक वचनामृत बोलता है, कभी गायन गाता है, कभी भजता है, कभी

सेवा करता है, कभी २ बेसुध भी होजाता है। ऐसे भक्त अपनी कई पीढ़ियों का उद्धार करते हैं जैसाकि कबीर जी कहते हैं:-

एकसौ एक पीढ़ि तरें जो कोई तारण होय ।

उपनिषदों में भी इसी प्रकार १०१ पीढ़ी बताई हैं।

पुनन्ति कुलानि पृथिवीं च ।

भक्त अपने कुल व सम्पूर्ण पृथिवी को पवित्र करता है, यथा:-

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था,
वसुन्धरा पुण्यवती च तेन ।
अपार सच्चित्सुखसागरेऽस्मिन्,
लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः ॥

भक्त सांसारिक वासनाओं का विशेषकर काम का त्याग करते हैं, जितनी वासना फुरें सर्व भगवन् इच्छा से प्रेरित हों व भगवन् इच्छा को पूर्ण करने वाली हों। हृदय में भगवन् प्रेम की अजस्रधारा निरन्तर ऐसी बहती रहे जैसे गंगा का शीतल प्रवाह। कभी एक क्षण भी हृदय भगवन् प्रेम से शून्य न रहे जैसे मीन के लिये जल ही जीवन होता है, ऐसे ही भक्ति मार्ग पर चलने वाले के लिये भगवन् प्रेम ही जीवन है:-भक्त नामदेव कहते हैं:-

जैसे भूखे भूख अनाज,
तृषावन्त जल सेती काम ।
जैसे कामिनि कामी प्यारी,
तैसे नामे नाम मुरारी ॥

श्रोत्र से भगवन् के गुण श्रवण करना, जिह्वा से गुण कीर्तन करना, हस्तों से पूजा सेवा, पगों से सत्कार्य पूर्णार्थ चलना, मुख से नामोच्चारण व भगवन् कथा का पाठ, नासिका से भगवत चरण से स्पर्श हुए पुष्पों की सुगन्धि लेना, इस प्रकार सर्वाङ्गों को भगवन् के अर्पण करना ही जीवन का उद्देश्य है। मन से स्वरूप का चिन्तन करना, बुद्धि से ध्यान, चित्त से स्मरण, अहंकार से भगवन् पर अपना मान करना इस प्रकार आत्मा से आत्म निवेदन करना तथा सर्वस्व भगवन् के अर्पण करना भगवन् के लिये सर्वत्र ही व्याकुल होना भक्ति का साधन है। पद्मपुराण में भगवान् ने अपने भक्तों की भक्ति को ही महान पद दिया है।

मम भक्ता हि ये पार्थ न मे भक्तास्तु मे मताः ।
मद्भक्तस्य तु ये भक्तास्ते मे भक्त तमाः मताः ॥

हे पार्थ ! जो मेरे भक्त हैं वह भक्त नहीं किंतु जो मेरे भक्तों के भक्त हैं वे मेरे मत में श्रेष्ठ हैं महानुभाव तुलसीदास जी का वचन है:-

मेरे मन प्रभु अस विश्वासा ।
राम ते अधिक राम के दासा ॥

भगवान् भक्तों के कष्ट को स्वयं आकर दूर करते हैं यथा राजा दुर्योधन की आज्ञा पाकर कौरव सभा में दुष्ट दुशासन जब दीन द्रौपदी को केशों से ग्रहण करके सभा में लाया तो दीन, दुःखी द्रौपदी भक्त वत्सल भगवान का नाम तन्मय होकर रटती है कि हे भगवन् !

काले हि चास्मिन्नपिता न बन्धु-
र्न भ्रातरो नैव सुता न माता ।
न तत्सहायाः सुहृदो न मित्रं,
त्वमेव विष्णो भव मे शरण्यः ॥१॥

हे कृष्ण विष्णो ! मधुकैटभारे,
भक्तानुकम्पिन् भगवन् मुरारे ।
त्रायस्व मां केशव लोकनाथ,
गोविन्द दामोदर माधवेति ॥२॥

तात्पर्य यह है कि हे भगवन ! इस समय मेरा कोई नहीं है न माता, न पिता, न बन्धु, न भ्राता, न पुत्री, अधिक क्या संसारी कोई भी सहायक नहीं है, हे भगवन् ! हे विष्णु, अब तो केवल आपकी ही शरण है इतना कहते ही भक्त वत्सल भगवान् से नहीं रुका गया और तत्क्षण ही आकर:-

एवं वदति यावत्सा तावद्विष्णु समागतः ।
वस्त्ररूपी च संजातः पाण्डवानां च पालकः ॥

पाण्डवोंके पालक भगवान् विष्णु अनन्त चीर रूप होते हुए सच्चे हृदय की वेदना से शीघ्र प्रकट होगये । अतः भगवान् निज भक्तों के परम प्यारे और रखवारे हैं । महाराज जयमलके लिए भगवान् ने युद्ध किया, सैन भक्त की सेवाका कार्य भी स्वयं सम्पादन किया । भगवत् के वचन हैं ।

जहाँ भक्त मेरे पग धरें तहां धरूं मैं हाथ ।
लारे लाग्यो ही फिरूं कबहूं न छोड़ूं साथ ॥२
जो मोको वश कियो चहै भक्तन की कर सेव ।
उनमें होकर मैं मिलूं करूं बहुत ही हेव ॥ २

इस प्रकार भगवद्भक्त भगवान् के अति प्रेमी पात्र हैं, जो भगवद्भक्ति नहीं करते उनको शेष जी भार रूप कथन करते हैं:

न भूम्या पर्वत भारो न मे भारो वनस्पतैः ।
विष्णुभक्तिविहीनस्य तस्य भारो सदा मम ॥

न मुझे भूमि का भार है और न पर्वत वनस्पतियों का ही, किन्तु जो विष्णु की भक्ति से विहीन है उस का ही मुझ को भार है ।

भक्ति हीन गुण सुख सब ऐसे ।
लवण बिना बहु व्यञ्जन जैसे ॥
भक्ति वन्त अति नीचहु प्राणी ।
मोय प्राण प्रिय सुन मम बाणी ॥

इस लिए पाठको ! भक्ति को परम प्रेम से अपनाओ और परम सुख पाओ । बोलो प्रेम से भगवद्भक्ति की जय ।

देख हरि मुसकाने

[ले० श्रीमती व्रजकुमारी]

खंजन मीन मिरग लजकाने,
देख नयन चारू अलसाने ॥ टेक ॥
बिम्बाफल सम अधर हरि को,
शुक लख नासा लजाने ॥ १ ॥
दशन पांति की लख चारुता,
भये नीरस दाड़िम दाने ॥ २ ॥
भ्रू बंकता लखि भाल में,
मनसिज चाप झुकाने ॥ ३ ॥
व्रज नयन सों छवि पान करत है,
देख हरि मुसकाने ॥ ४ ॥

प्रेम

[ले० श्रीमती ब्रजकुमारी ।]

इस विशाल विश्व का आधार और प्रत्येक मनुष्य के जीवन में माधुर्य प्रदान करने वाला तथा ईश्वर प्राप्ति का सर्वोत्कृष्ट साधन एक प्रेम ही है। यह ढाई अक्षरों से निर्मित आनन्दप्रद' सर्वशक्तिमान् विश्व के नियन्ता का स्वरूप है जैसा कि कहा है:-

दो०-प्रेम स्वर्ग है स्वर्ग प्रेम रूप भगवान् ।
प्रेम विश्व का संस्थापक है प्रेम विश्व का प्राण

इसप्रेम ने ही प्रेम रज्जु से संसार के प्रत्येक प्राणी, पशु, पक्षी और मनुष्य को बांध रक्खा है। जड़ चेतन, द्रुम, लता आदि में भी उसी प्रेम का विकाश होरहा है। प्रेम ही एक ऐसा है जो एक को दूसरे में तन्मय कर देता है।

प्रेम की रस्सी का बन्धन और सब बन्धनों से दृढ़ है, क्योंकि भ्रमर को यदि काष्ठ में बंद किया जाय तो काष्ठ को भेद कर बाहर आजाता है परन्तु अत्यन्त कोमल कमल में जब भ्रमर बंद हो जाता है तो उसे काट कर नहीं निकलता और प्राण दे देता है।

ऐसा जो प्रेम है उसको हम यदि लेखनी अथवा वाणी द्वारा वर्णन करें तो यह असम्भव है। यह तो बड़ा गहन गंभीर विषय है।

प्रेम का रहस्य अकथनीय है जैसे कि गूंगा स्वाद जान कर उसका रहस्य कहने में असमर्थ होता है इसी प्रकार प्रेमी का हृदय ही उस प्रेम के रहस्य व तत्व को जान सकता है। बुद्धि के द्वारा प्रेम का विवेचन नहीं किया जा सकता। सच्चे प्रेम में गुणों की खोज नहीं की जाती। वह तो गुण, अवगुण, रंग रूप, यश, कीर्ति और बुद्धि से भी परे, है वह अति सूक्ष्म व बोधगम्य वस्तु है।,

जब प्रेम में स्वार्थ का सम्पर्क होता है तब यह निकृष्ट समझा जाता है, और निस्वार्थ उत्कृष्ट। क्योंकि स्वार्थ पूर्ण प्रेम स्वार्थ की पूर्ति होने पर अवश्य घटने लगता है और निस्वार्थ उत्तरोत्तर बढ़ता रहता है। प्रेम के दो भेद हो सक्ते हैं।

एक जो कि भगवत् सम्बन्धी अर्थात् अलौकिक दूसरा लौकिक प्रेम। दोनों की प्रेम में दशा एक ही होती है दोनों ही अपने २ प्रेमी का स्मरण कर उसमें तल्लीन होते हैं। उनमें अन्तर इतना ही है कि एक का आधार जगदीश्वर होता है, और दूसरे का आधार सांसारिक व्यक्ति होता है। दोनों प्रेमी अपने२ प्रेमी का सर्वदा ध्यान करते रहते हैं। जैसा कि-

तत्प्राप्य तदेवावलोकयति तदेव शृणोति
तदेव भाषते तदेव चिन्तयति।

प्रेमीपात्र की प्राप्ति होने पर प्रेमी जन उसी का अवलोकन करता है, उसी के वाक्यों को सुनता है, उसीसे बोलता है और उसी के विषय की चर्चा व चिन्ता करता है।

प्रेम की उन्नत दशा में प्रेमी को आत्मगौरव

मनोमहत्व का भी ध्यान नहीं रहता है। वह तो अपने प्रेमी में अपने अनन्त्व को न्यौछावर कर देता है। ऐसा जो प्रेम है जो कि दुष्कर्म को सुकर्म, और द्वैत को अद्वैत, एक व्यक्ति के हृदय को दूसरे का हृदय, कर देता है यदि वह प्रेम जगन्नियन्ता से किया जाय तो प्राणी को भव बन्धनों से छुटा कर कैवल्य प्राप्ति अर्थात् अनन्त सुख और परमानन्द को प्राप्त कराता है।

ईश्वर का प्रेम अनन्त, अविनाशी और सब दुःखों का छुड़ाने वाला है। यदि प्राणी सबका परित्याग कर अनन्य प्रेम से भगवान् की शरणागत हो तो भगवान् उसके जन्म जन्मांतरों के पातकों का विनाश कर उसको अपना लेते हैं।

भगवान् ने गीता में भी कहा है:

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाःपर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

जो मनुष्य, अनन्य चित्त से मेरी उपासना करते हैं अथवा प्रेम करते हैं उनकी सुधि मैं स्वयं लेता हूं। और भी कहा है:-

प्रेमी को ऋणियां रहूं यही हमारो सूल।
चार मुक्ति दई ध्यान में देन सको अब मूल॥

उस भगवान् के प्रति अनन्य प्रेम होना चाहिये। भगवान् अनन्य प्रेमी के विषय में कहते हैं।

वाग्गद्गदा द्रवते यस्यचित्तं,
हसत्यभीक्ष्णं रुदति कचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च,
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥

प्रेम में जिसकी वाणी गद्गद् हो जाती है, चित्त द्रवीभूत हो जाता है, बारम्बार कभी हंसता, कभी रोता और कभी लज्जा छोड़ कर गाता है, नाचता है, ऐसे लक्षणों वाला भक्त भुवनों को पुनीत करता है।

प्रेम की अलौकिक शक्ति समस्त ब्रह्माण्ड को अपने वश में करलेती है। जिस भगवान को अज, अविनाशी, सर्वज्ञ और अन्तर्यामी कहा जाता है वह प्रेम की रस्सी में बन्धा हुआ अपढ बालकों के पीछे दौड़ता और सेवा करता देखा गया है।

निर्गुण को सगुण रूप बनाता है प्रेम ही।
इस जीव को ईश्वर से मिलाता है प्रेम ही॥
धर्मार्थ काम मोक्ष भी पाता है प्रेम ही।
और भक्ति, मुक्ति का सदा दाता है प्रेम ही॥
बामन हो जिसने नाप लिया वि.व यह सारा,
ऊखल से वही बन्ध गया है प्रेम के द्वारा॥

प्रह्लाद के प्रेम वश उस पूर्ण ब्रह्म परमात्मा ने नरसिंह रूप धारण किया और कौशल्या के प्रेम से उसने राम का चोला पहिना। जब देवकी ने अनन्य प्रेम से इसे याद किया तो वह कृष्ण बन गया। इससे अधिक प्रेम का और क्या प्रभाव हो सकता है?

योगीश ध्यान लगावते,
वह ध्यान में आता नहीं।
पर प्रेम ने ध्रुव भक्त के,
उसको ही पास बुला लिया॥
शुद्धनाई से लगाओ,
भोग वह खाता नहीं।

वर प्रेम वश हो भीलनी का,
　　बेर उसने खा लिया ॥
निर्गुण निरामय वह किसी की,
　　दृष्टि में आता नहीं ।
प्रह्लाद हित उसने अनोखा,
　　आप रूप बना लिया ॥
ब्रह्मादि देव मुनीश गण को,
　　सहज मिल जाता नहीं ।
पर धन्य उसको गोपियों ने,
　　बार बार नचा लिया ॥

प्रेम का कोई स्वरूप नहीं, प्रेम का कोई नाम नहीं । प्रेम माया की शक्तियों से ऊपर है। जहां तक माया है वहां तक गुण, अवगुण का सिल-सिला है, माया की सीमाएं हानि और लाभ से घिरी हुई हैं परन्तु प्रेम में हानि और लाभ कहां ? प्रेम की धारा के सामने धन, दौलत, राज पाठ, सगे और सम्बन्धी सब बह जाते हैं। प्रेमी दीवाना होता है उसे तन बदन की सुधि नहीं होती ।

एक दफा का जिकर है प्यारे मोहन ने ग्वाल बालों को गोकुल यह संदेशा देकर भेजा "कि कृष्ण ग्वाल बाल सहित जंगल में भूखे बैठे हैं" बस इतना सुनना था कि जो गोपी जिस अवस्था में थी उसी दशा में जो कुछ अच्छे से अच्छा पदार्थ उनके हाथ लगा लेकर भागी । एक गोपी को उस के पति ने मकान में बन्द कर दिया परन्तु वह अपने प्रेमवश स्थूल शरीर का त्याग करके सब से पहिले पहुंची । जब भगवान् कृष्ण ने व्रज मण्डल में अपनी बंशी द्वारा प्रेम की अजस्र धारा बहाई तो व्रज की जंगली जातियां, पशु और नदी, मस्त और दिवाने बन गए।

जब प्रेमका अङ्ग गोपियोंमें जाग्रत हुआ तो लज्जा,शंका और भयकी दीवारें टूटगई । अपना और पराया सब बिसर गये एक कृष्ण ही कृष्ण याद रहा । प्रेम का पूर्ण विकाश होने पर गोपियां अपने स्थूल रूप को भूल गई उनको अपने आपन का भान ही नहीं रहा, वह माया के समस्त बन्धनों से अलग होकर भग-वान् में लीन व तदाकार होगई । प्रेम के प्रभाव से जो गति गोपियों ने पाई वह किसी ऋषि मुनि को भी प्राप्त नहीं हुई । ज्ञान, ध्यान की बात जानने वाले ऊधो जी को भ्रम होगया कि भगवान् योग साधन से प्राप्त होते हैं । भगवान् ने अपने भक्त का भ्रम मिटाने के लिये कहा "भाई तुम गोपियों को जाकर योग साधन की क्रियाएं बताओ । बस फिर क्या था ऊधो जी बहुत प्रसन्न हुए, मन में समझा व्रज में जाकर भगवान् की प्यारी गंवार गोपियों को योग साधन की क्रियाएं बतायेंगे, जिससे कालान्तर में वह भी भगवान् को प्राप्त हो सकेंगी । ऊधो जी व्रज में पहुंचे भगवान् के हाथ की लिखी हुई पाती गोपियों को दी । उन्होंने पाती को लेकर बार २ हृदय से लगाया और प्रेमकी निर्मल धारा अपनी आंखों से बहाई । बार २ भगवान् का सन्देशा पूछ २ कर और भगवान को भान्ति भान्ति के उलहाने देकर ऊधो जी से उनके आने का कारण पूछा । ऊधोजी ने उत्तर में कहा कि मैं तुम को योग साधन करने की विधि बताने आया हूं ताकि तुम भगवान को प्राप्त होसको । बस फिर क्या था इतना सुनते ही गोपियां खिल खिला कर हंस पड़ी और उत्तर दिया:-

श्याम तन, श्याम मन, श्यामही हमारो धन,
आठों याम ऊधो यहाँ तो श्याम ही सों काम है।
श्याम हिये, श्याम जिये श्याम बिन नाहिं तीये,
आंधरे की लकड़ी अधार नाम श्याम है॥
श्याम गति श्याम रति, श्याम ही प्रनाम पति,
श्याम सुखदाई से भुलाए पर धाम है।
तुम भये बौरे यहाँ पाती लाये दौरे दौरे,
योग कहाँ राखें हम रोम २ श्याम है॥

जब रावण काल में संसार माया के जाल में फंस कर एक तरफ अत्यन्त कठोर, निर्दयी, हृदय शून्य, स्वार्थ परायण और अन्यायी हो रहा था और दूसरी तरफ दीन, दुःखी और भयभीत हो रहा था उस समय भगवान् रामने दक्षिणकी भील, वानर इत्यादि जंगली जातियों में जाकर प्रेम की धारा बहाई। उस निर्मल प्रेम के प्रभाव से जंगली मनुष्य लाखों की संख्या में राम के पीछे हो लिए। निर्जन वनमें राज्य से च्युत, सांसारी वैभवों से शून्य तपस्वियों का वेष धारण किए हुए राम ने केवल प्रेम के प्रभाव से बर्बर जातियों को अपना कर लिया। करोड़ों आदमियों ने पतंगे की भान्ति राम के ऊपर अपना जीवन न्योछावर कर दिया, और इन्हीं लोगों की सहायता से लंका के अद्वितीय दुर्ग को तोड़ कर अजय रावण को विजय किया। परन्तु यह उस समय हुआ जबकि रामने इनके साथ अपने भाइयों के तुल्य प्रेम किया। हनुमान जी का भगवान राम के प्रति जो प्रेम है उसको सुन कर हृदय गद् २ हो जाता है। भक्त विभीषण राम के दरबार में आकर रत्नों की एक माला श्रीराम को भेट करता है। भगवान् माला लेते हैं और सोचते हैं कि माला किस प्रेमी को दी जावे। इतने में हनुमान जी को बुलाकर माला गले में पहिना देते हैं। समस्त सभा की टकटकी महावीर जी की तरफ लग रही है अपने २ भाव के अनुसार कोई कुछ सोचता है और कोई कुछ। परन्तु महावीर जी का ध्यान कुछ और ही है वह माला को गले में से निकालते हैं और एक एक मणिके को निकाल कर तोड़ डालते हैं। इसी तरह उन्होंने माला के सब रत्न तोड़ डाले और फेंक दिये। जब उन से पूछा गया कि तुम ने क्या किया जो इतने अमूल्य रत्नों को तोड़ डाला? तो हनुमानजी ने उत्तर दिया कि मैं इन मणिकों में राम के नाम की तलाश करता था जब इनमें राम का नाम ही नहीं तो वह मेरे किस काम के हैं! इस पर कवि ने क्या अच्छा कहा है।

रतन अपार सार, सागर उधार किए,
लिए हित चाहके, बनाय माला करी है।
सब सुख साज रघुनाथ महाराज जू को,
भक्ति सों विभीषण जू आनि भेंट धरी है॥
सभा ही की चाह, अवगाह हनुमान गरे
डारि दई सुधि, भई मति अरबरी है।
राम बिन काम कौ, फारि मनि दीने डारि,
खोलि त्वचा नामहि दिखायो बुद्धि हरी है॥

प्रेम भगवान का अन्तिम रूप है जिसने प्रेम रूप अमृत का पान कर लिया उसे और किसी साधन की आवश्यकता नहीं और जिस ने प्रेम को प्राप्त नहीं किया उस के अन्य सब साधन व्यर्थ हैं। संसार के सुख के लिए भी प्रेम ही सर्वोत्कृष्ट साधन है।

इस संसार असार में प्रेम रत्न एक सार ।
बिना प्रेम पावे नहीं दुर्लभ मुक्ति द्वार ॥
प्रेम बराबर योग ना प्रेम बराबर ध्यान ।
प्रेम भक्ति बिन साधना सब ही थोथा ज्ञान ॥

निश्चय रूप से माया को कौन जीत सकता है ? माया को जीतने में वही समर्थ है जो शुष्क हृदय वालों का संग त्याग देता है । महानुभावों की सेवा करता है, अन्य सब वस्तुओं में माया, मोह छोड़ देता है, एकान्त में निवास करता है, लौकिक बन्धनों का उन्मूलन करता है, जो योगक्षेम की चिंता को त्याग देता है एवं जो वैदिक नियमों का भी उलंघन कर सत्य प्रेम का अनुयायी बनता है ऐसा ही प्रेमी अपने प्यारे को प्रसन्न कर सकता है । जिससे वह स्वयं और दूसरों को भी उपास्य की उपासना में कृतकार्य कर सकता है ।

जय झंकार ।

[ले० श्रीमती सुमित्रादेवी]

नभ मंडल में गूंज उठे केवल भक्ति की जय झंकार ।

चमक उठे जग में यह ही बस, अनुपम अपना रूप दिखा कर ।
आभा द्युति दामिनी की आज, दिखला कर निज सौन्दर्य अनूप ॥
पूर्ण विभूति से अलंकृत हो, चकाचौंध में डाल सभी को ।
दिखलावे अब अपना साज, होजावे उत्कृष्ट अनूप ॥

शुभ्र भक्ति कल्याण कारिणी-
को देखें जब आंख पसार
नभ मण्डल में गूंज उठे,
केवल भक्ति की जय झंकार ॥

जिज्ञासु कर्तव्य

[ले० श्री० महात्मा 'राम']

ब्रह्मानन्दं परम सुखदं केवलं ज्ञान मूर्तिम्
द्वन्द्वातीतं गगन सदृशं तत्वमस्यादि लक्ष्यम् ॥
एकं नित्यं विमल मचलं सर्व धीः साक्षि भूतं।
भावातीतं त्रिगुण रहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥

विवेक वैराग्य शम दमादि गुण सम्पन्न मुमुक्षु को ही ब्रह्म के जानने की योग्यता मानी है "यस्मिन् विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति" जिस के जानने पर मनुष्य सर्वज्ञत्व को प्राप्त होता है अन्य विद्याओं से कभी शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

अन्य विद्या परिज्ञानं अवश्यं नश्वरं भवेत्।
ब्रह्मविद्या परिज्ञानं ब्रह्म प्राप्तिकरं स्थिरम्॥

अन्य विद्याओं का ज्ञान नाशवान है परन्तु जो ब्रह्म विद्या का ज्ञान है वही स्थिर ब्रह्म की प्राप्ति करने वाला है।

तरति शोक मात्मवित्

ब्रह्मवेत्ता ही शोक मोहादि को तर सक्ता है अन्य नहीं, अतएव ब्रह्म ज्ञान ही सर्व प्राणी मात्र के लिये उपादेय है विशेषतः मनुष्य शरीर ही ब्रह्म प्राप्ति का द्वार है:-

दुर्लभं त्रयमेवैतत् देवानुग्रहहेतुकम्।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुष संश्रयः॥

भगवान के परम अनुग्रह से ही ये तीनों बातें प्राप्त होती हैं प्रथम मनुष्य शरीर जो कर्म क्षेत्र है, द्वितीय मोक्ष की इच्छा। तृतीय सद्गुरु की प्राप्ति। इस मनुष्य शरीर रूपी दुर्लभ रत्न को प्राप्त कर निज कर्तव्य पर आरुढ होना चाहिये यदि इसी शरीर में अपने कर्तव्य को न किया तो इस शरीर रूपी रत्न को खोकर पीछे पश्चात्ताप के अतिरिक्त कुछ न होगा:-

यथोपनिषदि:-

इहचेदवेदीदथ सत्यमस्ति,
नचेदिहावेदीन्महती विनष्टि

यदि इस मनुष्य शरीर में रहते हुए आत्मा को जान लिया जायगा तो ठीक है वरना महान हानि होगी, क्योंकि आत्मज्ञान के बिना पुरुष आत्मघाती होता है। यथाच:-

प्राप्य च उत्तमं जन्म लब्ध्वाचेन्द्रिय सौष्ठवम्।
न वेत्त्यात्महितं यस्तु स भवेदात्मघातकः॥

इस परमोत्तम मनुष्य शरीर को प्राप्त होकर और पुष्टेन्द्रिय युक्त होने पर भी जो आत्मा को नहीं जानता है वह आत्म घाती है। इसलिये:-

बस एक आत्म ज्ञान है अमृत रस की खान।
और बात बक २ बचन,
झख झख मरना जान॥
कभी न छूटे पीड़ दुःख से,
जिसे ब्रह्म का ज्ञान नहीं।
जे नर राम नाम नहीं लेवहीं,
ते नर खर कूकर शूकर सम,

वृथा जियें जग माहीं।
बिन खेती के बाड़ निरर्थक जैसे॥
और बिना नाव के,
जन्म व्यर्थ है तैसे॥

इसलिये विद्वान पुरुष बाह्य सुखों की अभिलाषा त्याग कर मुक्ति के लिये सन्त महात्मा सद्गुरु की शरण को प्राप्त होकर, उनके उपदेशानुसार आत्मसंयम करे। धैर्यवान विद्वान पुरुष को संसार के बन्धन से मुक्त होने को सर्व प्रकार के तथा वैदिक कर्मों के फल की तथा कर्मानुष्ठान की इच्छा का परित्याग करके आत्मा के अभ्यास में उपस्थित होना चाहिये।

अर्थस्य निश्चयो दृष्टो विचारेण हितोक्तितः।
न स्नानेन न दानेन प्राणायाम शतेन वा॥

हित वक्ता अर्थात् सद्गुरुओं के वाक्यार्थ का निश्चय विचार से ही देखा है स्नान, दान, प्राणायाम तथा सैंकड़ों कर्मानुष्ठान से नहीं, कर्म केवल चित्त शुद्धि के लिये ही है न कि तत्व वस्तु की प्राप्ति के लिये, तत्व की सिद्धि तो विचार से ही होती है, न कि कोटि कर्मों से।

अतो विचारः कर्तव्यो जिज्ञासोरात्म वस्तुतः।
समासाद्य दयासिंधु गुरुं ब्रह्म विदुत्तमम्॥

ब्रह्म वेत्ताओं में उत्तम दया के सिन्धु सद्गुरु की शरण को प्राप्त होकर जिज्ञासु को आत्मा का विचार ही कर्तव्य है।

कर्म साध्य लोकों को नाशवान जान कर यह अधिकारी पुरुष निर्वेद अर्थात् वैराग्य करे क्योंकि कर्म से योग की सिद्धि नहीं होती, मुक्ति की इच्छा वाला पुरुष परमात्मा के विज्ञानार्थ किञ्चित् समिधा आदि भेंट हाथ में लेकर वेदवेत्ता ब्रह्म परायण सद्गुरुओं को प्राप्त होवे।

तमाराध्य गुरुं भक्त्या प्रह्व प्रश्रय सेवनैः।
प्रसन्नं तमनुप्राप्य पृच्छेज्ज्ञातव्यमात्मनः॥

उन गुरुओं को प्राप्त होकर भक्ति, विनति, सुश्रुषा, नम्रता पूर्वक सेवा से प्रसन्न करके जानने योग्य आत्मा के वास्तव स्वरूप को पूछे और इस प्रकार विनय करें।

स्वामिन्नमस्ते नत लोकबन्धो।
कारुण्य सिन्धो पतितं भवाब्धौ॥
मामुद्धरात्मीय कटाक्ष दृष्ट्या॥
ऋज्व्यातिकारुण्य सुधाभिवृष्ट्या॥

हे स्वामिन्! नमस्कारादि सेवा भक्ति करने वाले अधिकारी जनों के माता पिता, करुणा के सागर हे सद्गुरो! संसार समुद्र में डूबे हुए मुझको अपनी अति सरल करुणामयी दृष्टि से सुधामृत की वर्षा करके पार करो, क्योंकि मैं बड़ा भयभीत हो रहा हूँ। हे भगवन्! दुःख से तरने योग्य दवाग्नि से संतप्त इस संसार में पाप कर्म रूप वायु के झोले भड़की हुई अग्नि की तपायमानमृत्यु से अति भय भीत हुए मेरी रक्षा करो, आपके अतिरिक्त हम किसीको भी अपनी रक्षा करने वाला नहीं देखते हैं:-

हे भगवन्! महान् विस्तृत भयानक संसार सागर से कैसे पार होवेंगे और हमारा कल्याण किस प्रकार से होगा और उसका क्या उपाय है। हे भगवन्! हम कुछ भी नहीं जानते हैं कृपा करके हमारी

रक्षा करो जिस तरह संसार के दुःखों का भली प्रकार से नाश हो वोही उपाय कीजिये। इस प्रकार कहते हुए अपनी शरण में आए हुए संसार के तापों से संतप्त शिष्य को करुणा भरी दृष्टि से देखकर दयालु सद्गुरु शीघ्र ही अभय करके कहेंगे।

हे विद्वन! तुम भय मत करो तुम्हारा अधः पतन नहीं होगा। जो संसार सागर से पार होने का उपाय है और जिस मार्ग द्वारा जितेन्द्रिय संन्यासी इस संसार सागर को तर गये हैं वही मार्ग हम तुम्हें दिखाते हैं। संसार भयके नाश करने वाला एक महान् उपाय है उसके द्वारा संसार सागर को पार कर पारब्रह्म परमानन्द को प्राप्त होगा।

वेदान्तार्थ विचारेण जायते ज्ञानमुत्तमम्।
तेनात्यन्तिक संसार दुःख नाशो भवत्यनु॥

वेदान्त के अर्थ के पुनः २ विचार से परमोत्तम ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होता है जिस ज्ञान से संसार का दुःख अत्यन्त नाशको प्राप्त होता है। श्रद्धा, भक्ति, ध्यान तथा योग ये मुक्ति के साक्षात् साधन श्रुति ने कहे हैं जो मुमुक्षु इन साधनों को अनुष्ठान करता है उनकी अविद्यासे कल्पित देहादिक बन्धनों से मुक्ति होती है।

यहां अधिकारी के प्रति ब्रह्म विद्या की प्राप्ति के लिये विवेक, वैराग्य, शमदमादि षट् सम्पत्ति तथा साधन चतुष्टय विद्वानों ने कहे हैं इन साधनों के होते हुए ही सद्ब्रह्म में निष्ठा होसक्ती है अन्यथा नहीं:-

आदौ नित्याऽनित्यवस्तु विवेकः परिगण्यते।
इहामुत्रफल भोगविरागस्तदनन्तरम्॥

नित्य अनित्य वस्तु का विवेक प्रथम साधन है। इस लोक तथा परलोक के फल भोगों में वैराग्य-द्वितीय साधन है।

शमादि षट्क सम्पत्ति, मुमुक्षुत्वमिति स्फुटम्॥

शमादि षट् सम्पत्ति तृतीय सधान है। मुमुक्षुता अर्थात् मोक्ष की तीव्र इच्छा चतुर्थ साधन है। ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है इस प्रकार युक्तियों से निर्णय करना ही विवेक है और ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त यावत् भोग्य पदार्थ हैं उनको दुःख रूप समझ कर जो काक विष्टा के समान त्याग की इच्छा है सो निर्मल वैराग्य है।

अन्तःकरण में स्थित संस्कार रूप से जो विषय भोगों की वासना है उसका सर्वथा परित्याग शम है। बाह्य वृत्तियों का भली प्रकार से निरोध करना दम कहलाता है। बाह्य पदार्थों का आश्रय करने वाली वृत्ति की उत्पत्ति न होने देना उत्तम उपरति कहलाती है। निवृत्ति का उपाय न करके सर्व प्रकार के दुःखों को चिन्ता तथा विलाप रहित सहन करने का नाम तितिक्षा है। शास्त्र तथा गुरु वाक्य का भक्ति पूर्वक सत्य बुद्धि से धारण करने का नाम श्रद्धा है जिसके द्वारा सत्य वस्तु की प्राप्ति होती है। चित्तको एकाग्र करके और सत्य ब्रह्मको लक्ष्य करके सब काल में बुद्धिको स्थिर करना समाधान कहलाता है। अहंकार से लेकर सूक्ष्म स्थूल देह पर्यन्त जो अज्ञान से कल्पित बन्ध है इस बन्धन से स्वात्म स्वरूप के बोध द्वारा मुक्ति की तीव्र इच्छा मुमुक्षुता कही है। यह मुमुक्षुता ही ज्ञान की प्राप्ति का मुख्य द्वार है। वैराग्य और मोक्ष की इच्छा जिस जिज्ञासु में तीव्र होती है

उसी में शम दमादि साधन भी सार्थक होते हैं और वैराग्य तथा मोक्ष की इच्छा जिसमें मन्द होती है उसमें शम दमादिक साधन भी मरु भूमि में जलवत् आभास मात्र होने से निरर्थक हैं। मोक्ष के कारण रूप सर्व सामग्रियों में भक्ति ही श्रेष्ठ है। यहां स्व स्वरूप का पुनः २ स्मरण करना ही भक्ति है:-

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

जिस पुरुष की परमात्मा देव के प्रति जैसी परम भक्ति होती है वैसी ही जब गुरु देव में परम भक्ति होवे तो उसी महात्मा को गुरूपदिष्ट अर्थ का प्रकाश होता है।

विजानन्ति महावाक्यं गुरोश्चरण सेवया।
ते वै संन्यासिनः प्रोक्ताः इतरे भेषधारिणः॥

गुरु चरणों की भली प्रकार सेवा करके जिन्होंने तत्वमस्यादि महावाक्यों का अर्थ निश्चय किया है, वही सन्यासी हैं इतर भेष मात्र के धारण करने वाले हैं।

श्रवणं तु गुरोः पूर्वं मननं तदनन्तरम्।
निदिध्यासन मित्येतत्पूर्णबोधस्य कारणम्॥

सद्गुरु द्वारा महावाक्यों को विधिवत् श्रवण करना पश्चात् श्रवण किये हुए अर्थ का एकान्त में अपनी युक्तियों से मनन करना तदनन्तर निदिध्यासन अर्थात् पुनः पुनः श्रवण किये अर्थ में वृत्ति की एकाग्रता करना यह तीनों पूर्ण बोध के कारण हैं।

अपूर्ण

भजन

निरंजन धुनि को सुनते हैं सन्त सुजान॥टेक॥
बैठ इकन्त लगाय के आसन मून्द लिये दो कान।
झीनी धुन में सुरत लगावें करते हैं नाद पिछान॥
घंटा संख बांसुरी बैना बाजें मधुरी तान।
ताल मृदंग नगारा पीछे, गरजे हैं मेघ समान॥
तन मन की सब दुविधा मेटी धरें निन्तर ध्यान।
ब्रह्म जोति घट भीतर दर्शी बिसरें है काया भान॥
दिन २ ध्यान नाद का सुनकर होत मन गलतान।
ब्रह्मानन्द भव बन्धन छूटे पाये हैं पद निर्बान॥

२

तैंने सुमरया ना भगवान् तेरे सब दिन यों ही गये॥
नौ दस मास गर्भ में राख्या वहां तैं वचन भरे।
बाहर आकर भूल गया तैंने यह क्यों जुलम करे॥
बाल पना हंस खेल गंवाया ज्वानी में जोर भरे।
विषय बासना में फंसकर मर गये, हरने बिसर गये॥
बूढ़े होकर लई सुमरणी अब तू जाप करे।
तेरे पिछले औगुन कहां छुपाई अगले भी आय अड़े
वृद्ध भया कफ बाय ने घेरा पौली में आन पड़े।
ले लाठी कुत्यां ने मारे तैंने भंगते ना बड़न दिये॥
कभी न आया सन्त शरण में कभी न सुकरम किये
कहै कबीर सुनो भाई साधो जम के लोक गये॥

३

सत्संगत में जाके पतित पार हो जाते॥टेक॥
वाल्मीक खुटकर्म करे थे लूट २ धन लाते।
सप्त ऋषि बनखण्ड में मिल गये सच्चा मार्ग पाते॥

वेश्या भड़ली, कर्मा कुबड़ी धन्ना भक्त कहाते।
रैदास भक्त था त्वदर्शी शब्द जिन्हों के गाते॥
लिखमा माली नामदेव छीपा सत्संगी फल पाते।
अजामील सुत हेत पुकारे स्वर्ग लोक दर्शाते॥
भीलनी जात अधमनारी थी रामचन्द्र घर आते।
झूठे बेर तोड़के लायी रुची २ भोग लगाते॥
लोहा भी कंचन हो जाता पारस संग मिलाते।
लोहा काठ संग में लाके जल के बीच तिराते॥
जैसे पत्थर घसे रज्जु ते ऐसे पाप कट जाते।
सन्ता के शरणा जाके कवि भीष्म सुख पाते॥

४

हरि पावन की गति न्यारी है॥ टेक

कष्ट तपस्या पढन लिखन सूं,
ढूंढत मूढ अनारी है॥ १॥
अड सठ तीरथ भरमत डोले,
देह गई सब हारी है॥ २॥
निर्जल व्रत किये बहु भान्ति,
आशा फलन की धारी है॥ ३॥
तप करने कूं वन जा बैठा,
कीनि त्वचा उघारी है॥ ४॥
पवन अहारी होय तन गारी,
दर्शे नाहिं मुरारी है॥ ५॥
विद्या पढि पंडित होवा,
अर्थ करे बहु भारी है॥ ६॥
अभिमानी होय जन्म गंवायो।
भयो ना प्रेम खिलारी है॥ ७॥
सांची भक्ति बिन हरि नहिं रीझें।
बहुत गये सिर मारी है॥ ८॥

चरणदास सुखदेव श्याम पर,
तन मन सूं बलिहारी है॥ ९॥

५

एक प्रेम प्रीत की बात, और कछुनहीं करना॥ टेक
गद्‌गद् कण्ठ अट पटे बैना, उठें रूंग संग बर्षे जल नैना
इस विरहन कूं नहीं है चैना,
कर हरि जना का साथ इसीसे हो तरना॥
प्रेमप्रीत ते गोपी लागी, निद्रा भूख जिन्हों की भागी॥
पूर्व प्रीत बिट्ठली जागी,
जिनके दुर्बल हो गये गात कृष्ण का लिया शरना
सुदामा ऋषि द्वारका धाये, कृष्ण देवके दर्शन पाये।
रुच २ तुण्डल भोग लगाये,
जिनके पुलकन लागे गात रुकमणी लिया चरणा
प्रेम करा जिन सब कुछ पाया,
बिना प्रेम कछु हाथ न आया।
हरि चरणन में ध्यान लगाया,
कहते चेतन नाथ प्रेम ते है तिरना॥

६

कठिन सांवलिया की प्रीत, लागी सो ही जाने॥ टेक
संतन लागी संतन जाने, के जाने जगदीश॥ १॥
एक लड़ लागी दो लड़ लागी, घुल गया प्रेम जंजीर॥
जैसे डस गया भुजंग यो काला, चड़ गई घेर घुंमीर॥
प्रीत लगी प्रह्लाद भक्त की,
कुल की तोड़ी रीत॥ ४॥
मीरां के प्रभु गिरधर नागर,
तुम बिन कौन बन्धावे मेरी धीर॥५॥

भक्ति के संरक्षक

राय बहादुर ला० सेवकराम जी एम. एल. सी, बार-एट-ला लाहौर	१२५)
भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१११)
राय बहादुर ला० बनारसीदास जी रईस, मिल ओनर अम्बाला	१०१)
श्रीमान भाई नारायण सिंह जी हीरामण्डी लाहौर	१०१)
राव बहादुर, कप्तान राव बलबीर सिंह जी ओ. बी. ई. रामपुरा	५१)
सेठ अर्जुनदास जी भटिण्डा	५१)
राव श्रीराम जी रईस नांगल	२५)
म० शोभाराम जी डूंगरवास	२५)
चौ० धर्मसिंह जी मलिक, तहसीलदार रेवाड़ी	२५)
राव निहालसिंह जी सूबेदार पाल्हावास	२५)
बा० स्वयम्बरदास जी बी० ए० इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्ज पटना	२५)
श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलबीरसिंह जी	२५)
सेठ बनवारी लाल जी लोहिया चावड़ी बाजार दिल्ली	२५)
चौ० नेतराम साहब गिरदावर हलका जाटूसाना जिला गुड़गांवा	२५)
बक्शी चाननशाह एम. ए. एल. एल. बी. इन्कम्टैक्स आफीसर जालंधर	२५)
पं० मूलचन्द जी शर्मा (दहीना निवासी) अकाउण्टैण्ट हेड आफिस जयपुर	२५)
ला० नूनकरणदास जी अग्रवाल भिवानी।	२५)
राजा रूपसिंह जी रईस जिहाज़गढ़।	२५)
पं० गोपीनाथ जी [बिहाली निवासी] मालिक फार्म काशीनाथ बच्चूमल गली परांवठा दिल्ली	२५)
श्रीमती खुशालदेवी धर्मपत्नी चौ० नवलसिंह जी कोसली।	२५)
सेठ शिम्भुदयाल जी बीकानेर	२५)
चौ० रामजीलाल जी धवाना, हांसी	२५)
चौ० चन्दनसिंह जी कप्तान दतिया राज्य	२५)
ठाकुर उमरावसिंह जी रईस नान्धा	२५)
ला० दुर्गाप्रसाद जी भार्गव कुतबपुर	२५)
लक्ष्मी देवी खोसल धर्मपत्नी ला० बद्रीनाथ जी बी. ए. श्रीनगर	२५)
बाई बदामो देवी पुत्री ला० गनेशीलाल चर्खीदादरी	२५)
राय बहादुर सरदार शोभासिंह जी आनरेरी मजिस्ट्रेट नई दिल्ली	२५)
श्रीमती भक्तावरीदेवी धर्मपत्नी भक्त नन्दकिशोर जी चर्खीदादरी	२५)
श्रीमती गोदावरीदेवी भगनी ला० प्रभुदयाल जी "	२५)
सेठ उमरावसिंह जी डालमियां चिड़ावा	५१)
मुन्शी चण्डूमल बलीराम जी भटण्डा	५१)
राव गजराजसिंह जी बी० ए० एल० एल० बी० गुड़गावां	२५)
सेठ नागरमल जी सेखासरिया आनरेरी मजिस्ट्रेट मिथनाबाद	२५)

राय बहादुर सरदार बसाखासिंह जी नई दिल्ली २५)
ला० रामकुंवार जी सीनयर सब जज जालंधर २५)
सरदार भगवसिंह एडवोकेट जालंधर २५)
पी० एन० कोल बैरिस्टर दिवान भूतपूर्व देवास स्टेट लाहोर २५)
चौ० सुन्दरलाल नन्दलाल रईसान कमालिया जि० मिन्टगुमरी २५)
सूबेदार उगरामसिंह जी कोसली २५)
२५)

सहायक

चौ० हुकमसिंह जी निखरी ११)
बा० बैकुण्ठनाथ जी दिल्ली ११)
पं० जगन्नाथ जी रेवाड़ी ११)
चौ० शिवप्रसाद सेक्रेटरी अहीर स्कूल रेवाड़ी ५)
रामप्रसाद जी झाड़सा ५)
चौ० रामजीलाल जी कन्स्टेबल नांगलोई ५)
भक्त बनारसीदास जी दिल्ली ५)
महाशय शादीराम जी मस्तापुर, रेवाड़ी। ५)
श्रीमती सूरज देवी धर्मपत्नी चौ० जोरावरसिंह जी एडीशनल जज अलीगढ़। ५)
चौ० शिवनारायणसिंह जी कोतवाल, सीकर राजपूताना ५)
श्रीमान् पं० जयराम जी शर्मा 'सनातन' इलाहबाद बैंक देहली। ५)
ला० बनारसी दास जी, अकाउण्टेण्ट हजूरी, संगरूर। ५)
महन्त प्रकाशानन्द जी मन्दिर चरणदासियान बल्लीमारान दिल्ली ५)
मि० एल. के. मिसरा इंस्पेक्टर, पोस्ट आफिस जयपुर ५)
राय बहादुर लेखनारायण सिंह जी बाड़, पटना ५)
डाक्टर कवलकिशोर सिंह जी कलकत्ता ५)
राय साहब बांकेबिहारीलाल जी बी० ए० तहसीलदार चिड़ावा ५)
सेठ मेलाराम जी अग्रवाल भिवानी ५)
ला० रामचन्द्र जी वैद्य „ ५)
राव घीसाराम जी गढ़ीबोलनी ११)
बा० शिवरामसिंह जी „ ७)
जमादार दीपचन्द जी „ ५)
चौ० इन्द्रसिंह जी सिरहोल १०)
ला० ओंकारमल जी कानपुर ५)

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१. भगवत्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहित	मूल्य ॥=)
२. सारसंग्रह	मूल्य ≡)
३. शब्द संग्रह	मूल्य -)॥
४. भगवत् गीता दशम अध्याय पर्यन्त	मूल्य ।-)
५. अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	मूल्य -)।
६. वेदोपनिषत्	मूल्य ।-)
७. ज्ञानधर्मोपदेश	मूल्य -)॥।
८. भाषा फक्किका प्रकाश	मूल्य ॥)
९. भक्ति योग संग्रह	,, -)॥
११. शब्द संग्रह गुटका	,, ।)
२१. शब्द सदाचार संग्रह	,, -)।

मिलने का पता:–

श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" आश्रम रामपुरा रेवाड़ी।